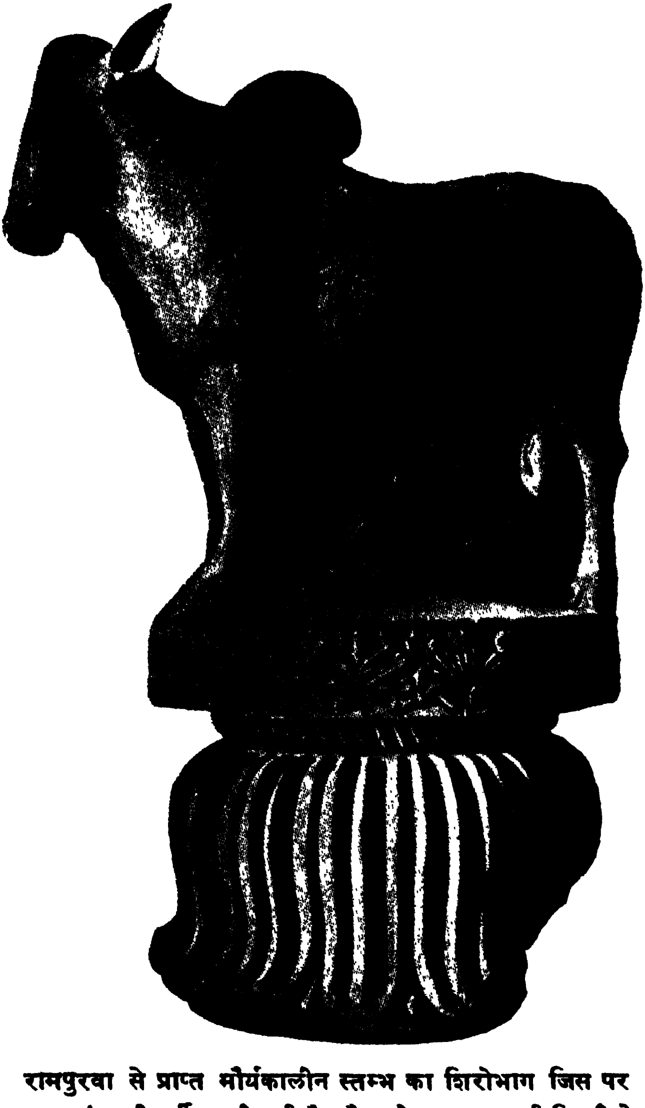


रामपुरवा से प्राप्त मौर्यकालीन स्तम्भ का शिरोभाग जिस पर
एक सांड़ की मूर्ति खड़ी हुई है और जो आजकल नई दिल्ली के
नेशनल म्यूज़ियम (राष्ट्रीय अजायबघर) में सुरक्षित है।

अशोक के धर्मलेख

(अशोक के शिलालेखों, स्तंभलेखों और गुफ़ालेखों का संग्रह)

सम्पादक :
जनार्दन भट्ट

पब्लिकेशन्स डिवीज़न
सूचना एवं प्रसार मंत्रालय
ओल्ड सेक्रेटेरियट, दिल्ली-८

मई १९५७

मूल्य :
एक रुपया

मुद्रक :
सुरेन्द्र प्रिंटर्स प्राइवेट लि०,
डिप्टी गंज,
दिल्ली ।

परिचय

अशोक के धर्मलेखों का यह संग्रह भगवान् बुद्ध की २५०० वीं जयन्ती के अवसर पर प्रकाशित हो रहा है। इसमें अशोक के मूल शिलालेखों, स्तम्भलेखों तथा गुफालेखों का केवल हिन्दी अनुवाद दिया गया है। अनुवाद सर्वसाधारण के लाभ के लिए यथासम्भव सरल भाषा में करने की चेष्टा की गयी है।

अशोक के धर्मलेखों के सम्बन्ध में अभी तक सब से प्रामाणिक ग्रंथ जर्मन विद्वान् श्री हुल्श कृत "इन्स्क्रिप्शन्स ऑफ अशोक" माना जाता है। यह हिन्दी अनुवाद श्री हुल्श के ग्रन्थ को आधार मानकर किया गया है, पर कहीं-कहीं अनुवाद हुल्श कृत अनुवाद से भिन्न भी है। इस अनुवाद में धर्मलेखों का क्रम भी वही रखा गया है, जो हुल्श ने अपने ग्रंथ में रखा है।

श्री हुल्श कृत अशोक के धर्मलेखों का संग्रह सन् १९२५ में प्रकाशित हुआ था। तब से लेकर अब तक अशोक के कई नये शिलालेख प्रकाश में आये हैं, जिनकी सूची नीचे दी जाती है :

१. येर्रागुडी का चतुर्दश शिलालेख
२. गुजर्रा का लघु शिलालेख
३. राजुल मन्दगिरि का लघु शिलालेख
४. येर्रागुडी का लघु शिलालेख
५. गवीमठ का लघु शिलालेख
६. पाल्कीगुण्डू का लघु शिलालेख

इन सब लेखों का भी अनुवाद करके यथास्थान इस पुस्तक में समाविष्ट कर दिया गया है।

इसी बुद्ध-जयन्ती के अवसर पर भारत सरकार के सूचना विभाग की ओर से अशोक के धर्मलेखों का अंग्रेजी अनुवाद भी प्रकाशित किया गया है। अंग्रेजी अनुवादकर्त्ता हैं श्री डी. सी. सरकार। अंग्रेजी अनुवाद के प्रारम्भ में श्री डी. सी. सरकार ने एक भूमिका भी लिखी है, जिसमें उन्होंने संक्षेप में अशोक के इतिहास तथा उनके धर्मलेखों के सम्बन्ध में अनेक ज्ञातव्य बातें दे दी हैं। इस भूमिका

का हिन्दी अनुवाद भी हमारी इस पुस्तक के प्रारम्भ में दे दिया गया है। इससे पाठकों को अशोक तथा उनके धर्मलेखों के सम्बन्ध में पर्याप्त जानकारी हो जायगी।

अशोक ने द्वितीय स्तम्भलेख में अपने धर्मलेख लिखवाने का उद्देश्य नीचे लिखे शब्द में प्रगट किया है :

"यह लेख मैंने इसलिए लिखवाया है कि लोग इसके अनुसार आचरण करें और यह चिरस्थायी रहे। जो इसके अनुसार आचरण करेगा, वह पुण्य का काम करेगा।"

यदि इस हिन्दी अनुवाद से अशोक के इस महान् उद्देश्य की पूर्ति में कुछ भी सहायता मिलेगी, तो हम अपना परिश्रम सार्थक समझेंगे।

—जनार्दन भट्ट

विषय-सूची

मैं कितना ही परिश्रम करूं और कितना ही राजकार्य करूं मझे सन्तोष नहीं होता······जो कुछ परिश्रम मैं करता हूँ वह इसलिए कि प्राणियों के प्रति जो मेरा ऋण है, उमसे उऋण हो जाऊँ।

—षष्ठ शिलालेख

सब मनुष्य मेरे पुत्र हैं। जिस तरह मैं चाहता हूँ कि मेरे पुत्र सब प्रकार के हित और सुख को प्राप्त करें, उसी तरह मैं चाहता हूँ कि सब मनुष्य ऐहिक और पारलौकिक सब तरह के हित और सुख को प्राप्त करें।

—धौली और जौगढ़ का प्रथम अतिरिक्त शिलालेख

जो सीमान्त प्रदेश में रहने वाली जातियां नहीं जीती गयी है ·······वे मुझ से सुख ही प्राप्त करें, कभी दुःख न पावें।

—धौली और जौगढ़ का द्वितीय अतिरिक्त शिलालेख

मेरे राज्य में सब जगह सब सम्प्रदाय के लोग एक साथ मेल-जोल से रहें।

—सप्तम शिलालेख

लोग एक दूसरे के धर्म को ध्यान देकर सुनें और उसका आदर करें······सब सम्प्रदायों में धर्म के सार (तत्त्व) की वृद्धि हो।

—बारहवां शिलालेख

१-अशोक का ऐतिहासिक वर्णन

१—मगध देश

प्राचीन मगध देश बिहार के दक्षिणी भाग में स्थित वर्तमान पटना और गया जिले को मिलाकर बना था। यहाँ बुद्ध के समय में बिम्बिसार नामक राजा राज्य करता था। बिम्बिसार का समय ईसा से पूर्व ५४६ से लेकर ४९४ तक माना जाता है और बुद्ध का समय एक प्राचीन लिखित प्रमाण के आधार पर ई० पू० ५६६ से लेकर ई० पू० ४८६ तक तथा एक किवदन्ती के अनुसार ई० पू० ६२४ से ई० पू० ५४४ तक माना गया है। बिम्बिसार की राजधानी राजगृह थी, जिसको स्वयं उसने मगध राज्य की सबसे पुरानी राजधानी गिरिव्रज के निकट, उसके बाहरी भाग में, बसाया था। बिहार के गया जिले में आजकल का राजगिरि प्राचीन राजगृह के स्थान पर बसा हुआ है।

बुद्ध के समय में भारतवर्ष के भिन्न भिन्न भागों में अनेक ऐश्वर्यशाली प्रजातन्त्र द्वारा शासित तथा राजा द्वारा शासित राज्य थे। उनमें से केवल १६ ऐसे थे जो महाजनपद या महाराज्य कहे जाते थे। मगध उनमें से एक था। परन्तु बुद्ध के निर्वाण के पूर्व ही इन १६ बड़े राज्यों में से ४ राज्य ऐसे थे, जो अपने राज्य का विस्तार करने की नीति का अनुसरण करके और पड़ोसी राज्यों को दबाकर, सर्वश्रेष्ठ हो गये थे। मगध उनमें से एक था और बाकी तीन कोशल, वत्स और अवन्ती के राज्य थे। इन तीन राज्यों की राजधानियां क्रम से श्रावस्ती (उत्तर प्रदेश के गोंडा और बहराइच जिलों की सीमा पर स्थित वर्तमान साहितमाहित ग्राम), कौशाम्बी (उत्तर प्रदेश में इलाहाबाद के पास वर्तमान कोसम ग्राम) और उज्जयिनी (मध्यभारत के पश्चिमी मालवा में स्थित वर्तमान उज्जैन नगरी) थी।

मगध राज्य बढ़ते बढ़ते अन्त में एक महा साम्राज्य बन गया था, जिसमें प्राचीन भारत का अधिकतर भाग सम्मिलित था। उस साम्राज्य के बड़प्पन की नींव बिम्बिसार ही ने डाली थी। उसने पूर्वी बिहार के मुंगेर और भागलपुर जिलों में स्थित अंग राज्य को जीत कर अपने साम्राज्य में मिला लिया था। उसका पुत्र और उत्तराधिकारी अजातशत्रु (४९४-४६२ ई० पू०) न केवल वृजि नामक

प्रजातन्त्र राज्य को, जिसकी राजधानी वैशाली (मुजफ्फरपुर जिले में वर्तमान बेसाढ़) थी, जीतकर उत्तरी विहार में अपनी शक्ति का विस्तार करने में सफल हुआ था, वरन एक लम्बे युद्ध के बाद कोशल के शक्तिशाली राजा को भी दबाने में सफल हो गया था। इसी बीच अवन्ती का राजा भी अपने राज्य का विस्तार कर रहा था, जिसके फलस्वरूप वत्स राज्य को तथा कई अन्य पड़ोसी राज्यों को दबाकर, उसने अपने राज्य में मिला लिया था। अन्त में अब उत्तरी भारत पर अपना आधिपत्य जमाने के लिए मगध और अवन्ती ये दो ही राज्य ऐसे थे, जो एक दूसरे के आमने सामने डटे हुए खड़े थे।

उत्तरी विहार के विरुद्ध सैनिक कार्यवाही करते समय अजातशत्रु ने वर्तमान पटना के निकट, गंगा और सोन नदी के संगम पर, पाटलि नामक ग्राम में एक किला बना लिया था। वहीं उसके पुत्र और उत्तराधिकारी उदयी (४६२–४४६ ई० पू०) ने ई० पू० ४५९ के लगभग पाटलिपुत्र नगर बसाया था। मगध राज्य का अब इतना अधिक विस्तार हो गया था कि यह आवश्यकता अनुभव होने लगी कि राजधानी को एक ऐसे नगर में रक्खा जाय, जो साम्राज्य के केन्द्र-स्थान में स्थित हो। नवीन पाटलि नगर चूंकि राजगृह से अधिक केन्द्रीय स्थान में था, इसलिए राजधानी वहीं परिवर्तित कर दी गयी।

ईसा पूर्व पांचवी शताब्दी के अन्तिम भाग में मगध राज्य का सिंहासन शिशुनाग (४१४-३९६ ई० पू०) के हाथ में चला गया। शिशुनाग प्रारम्भ में उत्तर प्रदेश के वाराणसी (वर्तमान बनारस) में बिम्बिसार के वंश के पिछले राजाओं की ओर से प्रतिनिधि-शासक के रूप में शासन करता था। मगध राज्य के विस्तार में उसका सबसे बड़ा काम अवन्ती को जीत कर मगध राज्य में मिलाना था। इस प्रकार उत्तरी भारत के कई विस्तृत क्षेत्र मगध राज्य के नीचे आ गये। इसके थोड़े ही समय बाद नन्दवंश के संस्थापक महापद्मनन्द ने शैशुनाग वंश को पराजित कर एक नया साम्राज्य स्थापित किया।

महापद्मनन्द ने देश के भिन्न-भिन्न भागों में राज्य करने वाली भिन्न-भिन्न शक्तियों को दबा कर विन्ध्य पर्वत के उस पार कलिंग देश सहित एक विस्तृत क्षेत्र पर अपना आधिपत्य जमा लिया था। उसी समय मेसडन का प्रसिद्ध यूनानी राजा सिकन्दर (ई० पू० ३३६-३२३) अफगानिस्तान और पश्चिमी पाकिस्तान के पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त को विजय करता हुआ पंजाब और सिंध में आ

पहुंचा था, जो उस काल में भारत के उत्तरापथ में सम्मिलित थे। उस समय नन्दवंश का अन्तिम राजा मगध में राज्य कर रहा था। प्राचीन यूरोपीय लेखकों ने लिखा है कि नन्द राजा की राजधानी पालिम्बोथ्रा अर्थात् पाटलिपुत्र थी। उन्होंने यह भी लिखा है कि नन्द राजा प्रासी (प्राची) लोगों और गंगराइडे लोगों का अधिपति था। उस समय 'प्रासी' वे लोग कहलाते थे जो पूर्वी उत्तर प्रदेश, बिहार और उत्तरी बंगाल में बसे हुए थे और गंगाराइडे या गंगा तट वाले वे लोग थे जो दक्षिणी बंगाल में गंगा के मुहाने वाले प्रांत में रहते थे। गंगाराइडे प्राचीन भारतीय साहित्य में बंग नाम से लिखे गये हैं।

२—मौर्य वंश

ई० पू० ३२५ में भारतवर्ष के पश्चिमोत्तर भाग से सिकन्दर के प्रस्थान कर देने के तुरन्त ही बाद, मौर्यवंश के संस्थापक चन्द्रगुप्त (ई० पू० ३२४-३००) ने नन्द वंश के राजा को गद्दी से उतार कर अपना राज्य स्थापित किया। उत्तरी बिहार और नेपाल के लिच्छवियों तथा अन्य इसी प्रकार के दूसरे लोगों के समान मौर्य लोग भी एक हिमालयवर्ती जाति के थे। धीरे धीरे जब वे ब्राह्मणों द्वारा व्यवस्थापित समाज में लीन होने लगे, तब उन्होंने क्षत्रिय होने का दावा किया, यद्यपि कट्टर ब्राह्मण-धर्मानुयायी तब भी उनको शूद्र वर्ण से अधिक पद का भागी नही समझते थे।

चन्द्रगुप्त एक विलक्षण योग्यता वाला, राजनीति-विशारद तथा सेनापति था। वह न केवल कलिंग के सिवाय नन्द के विस्तृत साम्राज्य पर अधिकार जमाने में ही सफल हो गया था, बल्कि सिकन्दर के सेनापतियों को निकाल बाहर कर, पंजाब, पश्चिमी पाकिस्तान के उत्तर-पश्चिम सीमाक्षेत्र और सिन्ध को भी अपने साम्राज्य के अन्तर्गत मिलाने में सफल हुआ था। ई० पू० ३०५ में चन्द्रगुप्त ने सिकन्दर के एक सेनापति सेल्यूकस नाईकेटार के आक्रमण को विफल करके ई० पू० ३२३ में सेल्यूकस की मृत्यु के कुछ समय बाद ही, पश्चिमी एशिया का एकच्छत्र अधिपति बन गया। सेल्यूकस ने अपनी कन्या का विवाह उसके साथ

कर दिया और अफगानिस्तान तथा बलूचिस्तान का बहुत सा भाग भी उसको दे दिया।

चन्द्रगुप्त के दरबार में मेगास्थनीज़ नामक सेल्यूकस का जो राजदूत रहता था उसने तत्कालीन भारत का बहुत अच्छा वर्णन लिखा है। परन्तु उसकी पुस्तक के केवल कुछ ही अंश शेष रहे हैं, बाकी नष्ट हो गये हैं। यूनानी राजदूत मेगास्थनीज़ के अनुसार मौर्य साम्राज्य के शासन का सूत्र एक अत्यन्त केन्द्र-नियन्त्रित अधिकारी-वर्ग या नौकरशाही के हाथ में था। राजा का निरंकुश शासन था और राजा का अधिकार ही सर्वोपरि था। राजा का सर्वाधिकार एक बहुत बड़ी सेना के बल पर आधारित था, जिसमें ६ लाख पैदल, ३०,००० घुड़-सवार, ३६,००० महावतों द्वारा चालित युद्ध के ९,००० हाथी तथा अनेक सहस्र रथ थे। चन्द्रगुप्त का साम्राज्य संभवतः उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिण में मैसूर तक और पूर्व में बंगाल से लेकर पश्चिम में अरब सागर और अफगानिस्तान तक फैला हुआ था। सन् १५० ईस्वी के एक शिलालेख से पता चलता है कि चन्द्रगुप्त का एक गवर्नर या प्रान्तीय शासक काठियावाड़ में नियुक्त था। जैन कथानक के अनुसार चन्द्रगुप्त मैसूर में श्रवण बेलगोला नामक स्थान में मृत्यु को प्राप्त हुआ था।

चन्द्रगुप्त के बाद उसका पुत्र बिन्दुसार (ई० पू० ३००-२७२) गद्दी पर बैठा। यूनानियों ने उसका उल्लेख अमित्रोकेटस अथवा अमित्रघात नाम से किया है। वह अपने पिता से प्राप्त विस्तृत साम्राज्य को सुरक्षित रखने और पश्चिमी एशिया के यूनानी राजा तथा उसके पड़ोसियों के साथ मित्रता का सम्बन्ध बनाये रखने में सफल रहा।

३—अशोक (२७२-२३२ ई० पू०)

बिन्दुसार का परलोकवास ई० पू० २७२ के लगभग हुआ और उसके बाद उसका विख्यात पुत्र अशोक राजगद्दी पर बैठा। परन्तु उसका राज्याभिषेक चार वर्ष बाद मनाया गया। इसका कारण यह प्रतीत होता है कि सम्भवतः उसको इस बीच एक लम्बे समय तक राज्याधिकार के लिए कलह करना पड़ा। कुछ

दन्तकथाओं के आधार पर ऐसा कहा जाता है कि अशोक ने सम्भवतः २६९ ई० पू० के लगभग अपने राज्याभिषेक की तिथि से लेकर ३७ वर्ष तक राज्य किया। अशोक का साम्राज्य उसके पिता तथा पितामह के साम्राज्य से भी बड़ा और विस्तृत था, क्योंकि उसने आंध्र और उड़ीसा के तट वाले क्षेत्र में स्थित कलिंग को भी मौर्य साम्राज्य में मिला लिया था। ईस्वी सन् की सातवीं शताब्दी में ह्वेनसांग नामक चीनी बौद्ध यात्री ने एक दन्त-कथा के आधार पर लिखा है कि मद्रास के पास कांचीपुरम् अशोक-साम्राज्य का एक भाग था।

अशोक की जीवनी और उसके पराक्रम के बारे में विस्तृत सामग्री साहित्यिक दन्तकथाओं से तथा शिलाओं और स्तम्भों पर खुदे हुए अशोक के धर्मलेखों से प्राप्त होती है।

गुजर्रा का लघु शिलालेख तथा मास्की का लघु शिलालेख केवल ये दो अशोक के धर्मलेख ऐसे हैं, जिन में अशोक का नाम पाया जाता है। अशोक के अन्य धर्मलेखों में उसका उल्लेख केवल "देवानांप्रिय प्रियदर्शी राजा" (अर्थात् देवताओं के प्यारे और सबों पर कृपादृष्टि रखने वाले) इन शब्दों में हुआ है। कभी कभी उसका उल्लेख केवल "देवानां प्रिय" या "राजा प्रियदर्शी" इस नाम से भी किया गया है। साहित्यिक दन्तकथाओं में प्रायः अशोक का उल्लेख प्रियदर्शी या प्रियदर्शन (प्रिय है दर्शन जिसका) इस नाम से भी हुआ है। परन्तु कुछ दूसरे प्राचीन राजा और अशोक के परिवार के कुछ सदस्य भी "देवानां प्रिय" और "प्रियदर्शन" नाम से कहे गये हैं। अशोक ने "प्रियदर्शी" नाम बौद्ध धर्म की दीक्षा लेने के बाद दया और निष्पक्षता की नीति का अनुसरण करने के कारण ग्रहण किया या अन्य किसी कारण से, यह ज्ञात नहीं है। दन्तकथाओं में कहा गया है कि अशोक का पूरा नाम अशोकवर्धन था।

अशोक के धर्मलेखों में अशोक को एक स्थान पर मगध का राजा कहा गया है, जो मौर्य सम्राटों का निवास स्थान तथा केन्द्रीय प्रांत था। कुछ स्थलों पर पाटलिपुत्र का उल्लेख अप्रत्यक्ष रूप से उसकी राजधानी के रूप में किया गया है। परन्तु धर्मलेखों में कई जगह "यहाँ" शब्द आया है, उसका अर्थ राजपरिवार या राजधानी या अशोक का समस्त राज्य लेना चाहिये। कुछ स्थानों पर साम्राज्य का उल्लेख पृथ्वी या जम्बूद्वीप के रूप में किया गया है, जिसका अर्थ प्राचीन भारतीय परिपाटी के अनुसार भूमण्डल या भूमण्डल का वह भाग है जिसमें

भारतवर्ष स्थित है।

धर्मलेखों में जिन नगरों का उल्लेख आया है वे ये हैं—उज्जयिनी, तक्षशिला, सुवर्णगिरि, तोसली, कौशाम्बी, समापा तथा इसिला। इनमें से प्रथम चार प्रांतीय राजधानियां थीं, जहाँ राजघराने के राजकुमार प्रतिनिधि-शासक के रूप में नियुक्त किये जाते थे। ऐसा प्रतीत होता है कि पाटलिपुत्र नगर प्राचीन भारतवर्ष के प्राच्य भाग और मध्यदेश भाग का केन्द्र-स्थान था। प्राच्यदेश और मध्यदेश में उस समय आजकल के पूर्वी पंजाब, उत्तरप्रदेश, बिहार और बंगाल शामिल थे। ऐसा प्रतीत होता है कि उज्जयिनी, तक्षशिला (जो पश्चिमी पंजाब के रावलपिंडी जिले में है) और सुवर्णगिरि (जो आन्ध्र में कुर्नूल जिले के एर्रागडी नामक स्थान के निकट है) क्रम से पश्चिमी भारत में अपरान्त या पश्चाद्देश की, उत्तर-पश्चिम में उत्तरापथ की और दक्षिण में दक्षिणापथ की राजधानी थीं। तोसली उड़ीसा के पुरी जिले में भुवनेश्वर के पास वर्तमान धौली के स्थान पर थी। वह कलिंग देश की राजधानी थी, जिसे अशोक ने अपने शासन के नवें वर्ष में विजय किया था। समापा उड़ीसा के गंजाम जिले में जौगढ़ पहाड़ी के निकट एक प्राचीन नगर था और इसिला मैसूर के चीतलद्रुग जिले में वर्तमान सिद्धपुर के स्थान पर बसा हुआ था। सन् १५० ई० के जूनागढ़ शिलालेख के अनुसार काठियावाड़ में अशोक का प्रांतीय शासक एक यवन या यूनानी राजकुमार तुषाप्प नाम का था, जो कदाचित् उज्जयिनी के राजप्रतिनिधि राजकुमार के नीचे था। दन्तकथा के अनुसार अशोक स्वयं उज्जयिनी तथा तक्षशिला दोनों स्थानों पर अपने पिता के प्रतिनिधि के रूप में कार्य कर चुका था। अशोक के धर्मलेखों में कई बौद्ध तीर्थ-स्थानों का भी उल्लेख मिलता है, जहाँ सम्राट् अशोक तीर्थ-यात्रा करते हुए गये थे। ऐसे तीर्थ-स्थानों में नेपाल की तराई में लुम्बिनी ग्राम और बिहार के गया जिले में सम्बोधि या महाबोधि भी थे।

अशोक के साम्राज्य में जिन जिन जातियों के लोग रहते थे उनमें यवन, काम्बोज, भोज, राष्ट्रिक, पैत्र्यणिक, आन्ध्र, पौलिन्द (पुलिन्द), नाभक और नाभपंक्ति का उल्लेख धर्मलेखों में मिलता है। इनमें से यवन या यूनानी और काम्बोज लोग प्राचीन उत्तरापथ के विस्तृत क्षेत्र के उन भागों में रहते थे, जो आजकल अफगानिस्तान और पश्चिमी पाकिस्तान के नाम से प्रसिद्ध हैं। भोज, राष्ट्रिक, आन्ध्र और पुलिन्द लोग विन्ध्य पर्वत के दक्षिण में भारतवर्ष के दक्षिणापथ प्रदेश में रहते थे।

अशोक के धर्मलेखों में कहीं कहीं ऐसे लोगों और ऐसे देशों का भी उल्लेख है, जो उसके साम्राज्य के बाहर थे। एक स्थान पर उनका उल्लेख "अपराजित" (अर्थात् न जीते हुए) के रूप में किया गया है। अशोक के साम्राज्य के बाहर वाले कुछ देशों का उल्लेख विशेष रूप से धर्मलेखों में है। दक्षिण में ऐसा एक देश चोड़ या चोल लोगों का था, जो मद्रास राज्य के दक्षिणी भाग मे तंजवूर-तिरुचिरप्पल्ली में था तथा ऐसा एक दूसरा देश पाण्ड्य लोगों का था, जो मद्रास राज्य के दक्षिणी भाग में मदूरे-रामन्थपुरम्-तिरुनेल्वेली के क्षेत्रमें था। अशोक के धर्मलेख में केरलपुत्र और सत्यपुत्र नामक स्वतन्त्र राज्यों का भी उल्लेख आया है, जो दक्षिणी भारत के पश्चिमी तट पर मलयालम् भाषा-भाषी क्षेत्र में स्थित थे। भारतवर्ष के दक्षिण में ताम्रपर्णी या श्रीलंका का भी उल्लेख धर्मलेख में हुआ है। अशोक के साम्राज्य के पश्चिम में यूनानी राजा अन्तियोक अर्थात् पश्चिमी एशिया का राजा एंन्टीओकस-थिअस (२६१-२४६ ई० पू०) और उस अन्तियोक के चार पड़ोसी राजा तुरमाय या तुलमाय अर्थात् मिश्र का राजा टालेमी फिलडेलफेस (२८५-२४७ ई० पू०), अन्तेकिन या अन्तिकिनि अर्थात् मैसिडोनिया का राजा एन्टिगोनस गोनेटस (२७७-२३९ ई० पू०), मका या मगा अर्थात् उत्तरी अफ्रीका में साइरीनी का राजा मगस (२८२-२५८ ई० पू०) और अलिकसुन्दर अर्थात् इपाइरस का राजा एलेक्ज़ेंडर (२७८-२५५ ई० पू०) अथवा कारिन्थ का राजा एलेक्ज़ेण्डर (२५२-२४४ ई० पू०) का भी उल्लेख स्वतन्त्र राजाओं के रूप में हुआ है।

अशोक ने अपने धर्मलेख में कुछ ऊंचे राज्याधिकारियों या अफसरों का उल्लेख भी किया है, जो "महामात्र" कहलाते थे। वे भिन्न भिन्न अधिकारों या कार्यों पर नियुक्त थे—यथा कुछ महामात्र किसी नगर के न्याय-विभाग का कार्य देखते थे, कुछ महामात्र राजपरिवार की स्त्रियों के सम्बन्ध में आवश्यक बातों की देखभाल करते थे तथा कुछ महामात्र साम्राज्य के सीमावर्ती प्रांतों का प्रबन्ध करते थे। अशोक ने एक धर्म-सम्बन्धी विभाग भी स्थापित किया था जो धर्ममहामात्र नामक अधिकारियों के अधीन रक्खा गया था। राजदूत भी सम्भवत: इन्हीं महामात्रों में से नियुक्त किये जाते थे। अन्य दूसरे उच्च अधिकारी, जिनका उल्लेख अशोक के धर्मलेखों में आया है, "प्रादेशिक", "रज्जुक" और "युक्त" नाम के थे, जो कदाचित् क्रम से जिलों के समूह में, एक एक जिले में तथा जिले के एक एक भाग में अधिकारी या हाकिम नियुक्त थे। इसी प्रकार जिले के एक एक भाग में एक

और अफसर भी थे जो "राष्ट्रिक" कहलाते थे। एक प्रकार के ऊंचे अफसर और भी थे, जो केवल "पुरुष" नाम से कहे गये हैं। वे कदाचित् अशोक के विशेष एजेन्ट या कारिन्दा के रूप में थे। अशोक के छोटे अफसरों में "प्रतिवेदकों" या "गुप्तचरों" का तथा "लिपिकरों" या लेखकों का भी उल्लेख आया है। पशुओं तथा चरागाहों की देखभाल करने वाले अधिकारी कदाचित् ऊंचे अफसरों में गिने जाते थे।

४—अशोक का धर्म

अशोक के धर्मलेखों का प्रधान विषय "धर्म" है। लघु शिलालेख में "धर्म" शब्द बुद्ध के उपदेशों के अर्थ में आया है। परन्तु अन्य लेखों में धर्म का अभिप्राय उस नीतिशिक्षा से है, जिसका प्रचार अशोक ने बुद्ध भगवान् के उपदेशों का सार समझ कर किया था। बुद्ध ने एक गृहस्थ के शृगाल नामक पुत्र को जो उपदेश दिया था और जो दीर्घ निकाय नामक बौद्धधर्म-सम्बन्धी ग्रंथ में पाया जाता है, उसमें और अशोक की शिक्षा में कुछ समानता अवश्य है।

बौद्ध दन्तकथाओं में अशोक का उल्लेख बौद्ध धर्म ग्रहण करने वाले एक उपासक के रूप में तथा बौद्ध धर्म के संरक्षक के रूप में आया है। ऐसा कहा जाता है कि अशोक ने पाटलिपुत्र में अशोकाराम तथा साम्राज्य के भिन्न भिन्न नगरों में कुल मिलाकर कम से कम ८४००० बौद्ध विहार बनवाये थे। अशोक के धर्मलेखों से इस बात की पूरी पुष्टि होती है कि उसने बौद्ध धर्म ग्रहण कर लिया था।

कई स्थानों पर अशोक ने बुद्ध को "भगवान्" कह कर उल्लेख किया है और एक स्थान पर बुद्ध की शिक्षा को "सद्धर्म" के रूप में वर्णन किया है। लघु शिला-लेख में उसने कहा है कि "अढाई वर्ष से अधिक हुए कि मैं उपासक हुआ। पर एक वर्ष से अधिक हुआ जब से मैं संघ में आया हूँ, तबसे मैंने खूब उद्योग किया है।" एक लघु शिलालेख से पता चलता है कि बौद्ध धर्म के त्रिरत्न अर्थात् बुद्ध, धर्म और संघ में उसकी भक्ति और श्रद्धा थी। उसने उक्त शिलालेख में कुछ धर्मग्रंथों के नामों का भी उल्लेख किया है, जिनको उसने स्वयं चुना था और बौद्ध भिक्षु, भिक्षुणी तथा गृहस्थ उपासकों द्वारा अवश्य पढ़ने योग्य समझा था। एक लघु

स्तम्भलेख में उसने अपने अधिकारियों को यह आदेश दिया है कि जो कोई भिक्षु या भिक्षुणी संघ में फूट डाले, उसको संघ से निकाल देना चाहिए। बौद्ध संघ की एकता को सुरक्षित रखने का अशोक का जो यह उद्योग था, उसका पता दक्षिण की बौद्ध दन्तकथाओं से भी चलता है। अष्टम शिलालेख तथा लघु स्तम्भलेखों से पता चलता है कि अशोक ने बोध गया, जहाँ बुद्ध भगवान् ने बोधि या बुद्धत्व प्राप्त किया था, लुम्बिनी ग्राम जहाँ बुद्ध पैदा हुए थे तथा कनकमुनि बुद्ध के अवशेष पर जहाँ स्तूप खड़ा किया गया था, वहाँ तथा अन्य बौद्ध धर्म के तीर्थ-स्थानों की यात्रा की थी। कालसी और धौली की चट्टानों पर जो अशोक के शिलालेख हैं, उनके निकट ही एक हाथी का चित्र भी खुदा हुआ है और उसके नीचे "गजतम" अर्थात् श्रेष्ठ हाथी और "श्वेत" अर्थात् सफेद यह खुदा हुआ है। "गजतम" कालसी की चट्टान पर ओर "श्वेत" धौली की चट्टान पर है। गिरनार की चट्टान पर हाथी के चित्र की रेखा तो मिट गयी है, परन्तु उसके नीचे "सर्वश्वेत हाथी सब लोगों को सुख देने वाला" यह खदा हुआ मिलता है। इसमें कोई संदेह नही है कि श्वेत हाथी से तात्पर्य यहाँ बुद्ध से ही है। श्वेतहस्ती बुद्ध भगवान् का चिन्ह या प्रतिरूप माना गया है। प्राचीन भारतीय कला में अनेक स्थानों पर बुद्ध भगवान् को हाथी के रूप में निर्दिष्ट किया गया है।

बौद्ध दन्तकथा के अनुसार अशोक प्रारम्भ में अपने अनेक दुष्कर्मों तथा अपने ९९ भाइयों की हत्या करने के कारण, "चण्डाशोक" या प्रचण्ड अशोक के नाम से प्रसिद्ध था। परन्तु बाद को अपने असंख्य धार्मिक सत्कार्यों के कारण वह "धर्माशोक" अथवा पुण्यात्मा अशोक के नाम से प्रख्यात हुआ। परन्तु अनेक विद्वान् यह मानते हैं कि अशोक के चरित्र का यह वर्णन काल्पनिक या बनावटी है। बौद्धों ने अशोक का ऐसा वर्णन बौद्ध धर्म का महत्व प्रकट करने तथा यह दिखाने के लिए किया है कि बौद्ध धर्म में आने से मनुष्य के जीवन में कैसे परिवर्तन आ जाते है। अशोक द्वारा अपने सब भाइयों की हत्या की बात कदाचित् सही घटना नहीं है। परन्तु तेरहवें शिलालेख में स्पष्ट रूप से इस बात का उल्लेख है कि कलिंग युद्ध के बाद, जो उसके शासन के नवें वर्ष में हुआ था, किस प्रकार अशोक बिलकुल बदल गया था। युद्ध के भीषण रक्तपात से उसके मन पर ऐसी प्रतिक्रिया हुई कि वह एक साधारण भारतीय राजा के जीवन-क्रम को त्याग कर अहिंसा का पुजारी और प्रचारक हो गया तथा एक सामाजिक और धार्मिक सुधारक के रूप में अत्यन्त

पवित्र जीवन बिताने लगा। पहले उसकी पाकशाला में हजारों पशु और पक्षी सूप या शोरवा बनाने के लिये मारे जाते थे। बाद को उसके आदेश से केवल दो पक्षी और एक पशु ही मारे जाने लगे। उसने अन्य राजाओं की तरह मृगया (शिकार) खेलना भी छोड़ दिया था और धर्म-यात्राओं या तीर्थ-यात्राओं पर जाने की रीति प्रचलित की थी, ताकि तीर्थयात्रा में ब्राह्मणों, श्रमणों और बड़े बूढ़ों के सम्पर्क में आने का, उनको दान-दक्षिणा देने का और ग्रामवासियों को धर्म का उपदेश देने का अवसर मिले। उसने अपने अधिकारियों को भी यह आदेश दे रखा था कि वे समय समय पर इसी उद्देश्य से भ्रमण करें या दौरे पर जांय। उसने अपने उत्तराधिकारियों को भी यह सलाह दे रखी थी कि शस्त्र के बल पर देशों को विजय करने की अपेक्षा उदार और परोपकारी कार्यों के द्वारा पड़ोसी देशों के लोगों का हृदय जीतना ही सच्ची विजय है। जो लोग उसके साम्राज्य की सीमा के बाहर रहते थे उनके क्षमा के योग्य अपराधों को वह क्षमा करने के लिए भी तैयार रहता था। वह उनका विश्वास प्राप्त करने तथा उनको धर्माचरण के प्रति प्रेरित करने के लिए सदा उत्सुक रहता था।

अशोक बुद्ध की धर्मशिक्षा के संरक्षक के रूप में था। यह उसी के उद्योग का फल था कि बौद्ध धर्म, जो पहले केवल पूर्वी भारत का एक छोटा-सा स्थानीय संप्रदाय था, बढ़ते बढ़ते संसार के मुख्य धर्मों में हो गया। परन्तु अपने धर्म-लेखों के द्वारा जिस धर्म का प्रचार उसने किया वह वही धर्म नहीं था जिसका रूप हम बौद्ध धर्म के प्रारम्भिक धार्मिक साहित्य में पाते हैं। उसके धर्मलेख निर्वाण, चार आर्य सत्य और अष्टांग मार्ग के सम्बन्ध में विशेष रूप से मौन हैं। मनुष्य जीवन का सबसे बड़ा उद्देश्य उसने पारलौकिक सुख और स्वर्ग प्राप्ति को ही बताया है। यह बात और भी आश्चर्य देने वाली है जब हम यह देखते हैं कि बारम्बार उसके धर्मलेखों में संघ और श्रमणों का उल्लेख आया है और एक धर्मलेख में उसने उन बौद्ध धर्म-ग्रंथों का भी उल्लेख किया है जिनका अध्ययन करना वह न केवल गृहस्थ उपासकों के लिए, बल्कि भिक्षुओं और भिक्षुणियों के लिए भी उचित समझता था। अशोक के अनुसार परलोक में सुख या स्वर्ग की प्राप्ति उन्हीं लोगों के लिए संभव है, जो स्वयं धर्म का आचरण करते हैं तथा दूसरों से भी धर्म का आचरण कराते हैं। अशोक के धर्म की समानता बहुत कुछ उस बौद्ध धर्म से थी, जिसका रूप धम्मपद में पाया जाता है। कुछ विद्वानों के मत में धम्मपद में दिया

गया बौद्धधर्म का रूप उस रूप से प्राचीन है जो परम्परागत बौद्ध ग्रंथों में पाया जाता है। परन्तु यदि धम्मपद (जो बौद्ध धर्म में वर्णित निर्वाण आदि के सम्बन्ध में मौन नहीं है) बौद्ध धर्म के प्राचीन रूप का प्रतिनिधित्व करता है, तो अशोक के धर्मलेख कदाचित् उससे भी प्राचीन बौद्ध धर्म की शिक्षाओं के प्रतिनिधि रूप में माने जाने चाहिएं। अशोक की शिक्षाएं सार रूप से व्यावहारिक नीति-शिक्षा के रूप में हैं और किसी विशेष आध्यात्मिक या धार्मिक सिद्धांत, सम्प्रदाय अथवा मत पर अवलम्बित नहीं हैं।

अशोक ने कुछ सद्गुणों को ही धर्म समझा था। इन सद्गुणों में कम से कम पाप की मात्रा तथा अधिक से अधिक परहित और परोपकार की मात्रा तथा दया, दान, सत्य, पवित्रता, मृदुता और सज्जनता आदि गुण सम्मिलित थे। सदाचार, आत्म-दमन, विचार की शुद्धता, कृतज्ञता, दृढ़भक्ति आदि की प्रशंसा तथा ईर्ष्या, अभिमान, क्रोध, क्रूरता और हिंसा की निंदा इन धर्मलेखों में की गयी है। निम्नलिखित सद्गुणों का पालन करने का उपदेश अशोक ने भिन्न भिन्न अवसरों पर बहुत जोर के साथ दिया है:—माता पिता, उच्च व्यक्तियों और बड़े बूढ़ों की आज्ञा मानना; मित्रों, परिचितों, सम्बन्धियों, कुटुम्बियों, ब्राह्मणों और श्रमणों को दान देना; प्राणियों की हिंसा न करना तथा उन पर दया करना; कम वस्तुओं को संचित करना तथा कम व्यय करना; कुटुम्ब, सम्बन्धी, दास, सेवक, ब्राह्मण, श्रमण, बड़े बूढ़े, दरिद्र और पीड़ित व्यक्तियों के साथ उचित व्यवहार करना; अपने से बड़ों के प्रति आदर का भाव रखना तथा मित्र, परिचित, साथी, कुटुम्ब, सम्बन्धी, दास, सेवक के प्रति नम्रता और स्नेह रखना। इन गुणों का प्रचार दूसरों में करना धनी और निर्धन सब के लिए एक पुण्य कार्य के रूप में कहा गया है। अशोक ने इन सद्गुणों के समुदाय को धर्म का नाम दिया है तथा इसका आचरण करने के लिए उसने सब से आग्रह किया है, चाहे वे उसके साम्राज्य में रहते थे या साम्राज्य के बाहर। अशोक का विश्वास था कि इसके आचरण से उनका न केवल यहाँ ही सुख मिलेगा वरन परलोक में भी सुख प्राप्त होगा। परन्तु उसने यह भी अनुभव कर लिया था कि यह बिना कठिन उद्योग या प्रयत्न के प्राप्त करना संभव नहीं है। उसने यह भी कहा है कि इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए पाप से भय, धर्म का प्रेम, गुरुओं की आज्ञा-पालन और आत्म-परीक्षा नितान्त आवश्यक है।

जैसा कि अशोक के धर्मलेखों से प्रकट है, उसने दया, श्रद्धा, भक्ति, सहानु-

भूति और सत्य की प्रशंसा की है तथा क्रूरता, अश्रद्धा, अनादर, असहनशीलता और असत्य की घोर निन्दा की है। सब से अधिक बल जिस गुण पर उसने दिया है वह प्राणियों की अहिंसा या जीवों की रक्षा है। दो और गुण जिन पर उसने अधिक बल दिया है वे पद में अथवा आयु में अपने से बड़ों के प्रति आदर, उदारता और दानशीलता हैं। उसने जिस तरह मनुष्यों के लिए सुख और स्वास्थ्य की व्यवस्था की थी, उसी तरह पशुओं के लिए भी की थी। उसने प्राणियों के प्रति दया की शिक्षा बार बार दी है और अनेक जलचर तथा स्थलचर पशुओं और पक्षियों का मारा जाना अपनी आज्ञा से बन्द करा दिया था। उसकी अपनी पाकशाला के लिए भी जो पशु और पक्षी मारे जाते थे उनकी संख्या भी उसने सीमित कर दी थी और ऐसे उत्सवों तथा गोष्ठियों का करना भी उसने मना कर दिया था जिनमें मांस काम में लाया जाता था। निस्सन्देह ऐसी सभा, गोष्ठी, समारोह आदि जैसे कि धर्मपरिषद्, धर्मसम्मेलन आदि, बिना किसी बाधा के हो सकते थे। कुछ निर्दिष्ट की हुई तिथियों पर प्राणियों की हिंसा या उनको किसी प्रकार की पीड़ा पहुँचाना प्रायः वर्जित था। इस तरह की वर्जित तिथियाँ ये थीं : आषाढ़, कार्त्तिक और फाल्गुन की पूर्णिमा तथा पूर्णिमा के एक दिन पहले और एक दिन बाद की तिथि तथा बौद्धों के उपवास के दिन अर्थात् प्रत्येक पक्ष की अष्टमी, चतुर्दशी तथा अमावस्या। धर्मलेखों में तिष्य और पुनर्वसु नक्षत्र विशेष रूप से पवित्र माने गये हैं—इसका कारण कदाचित् यह था कि तिष्य नक्षत्र में अशोक पैदा हुआ था और पुनर्वसु नक्षत्र मौर्यों के मूल-प्रदेश मगध का नक्षत्र था। राजधानी में तथा राजकीय परिवार में यज्ञों में पशुओं का बलिदान भी बन्द कर दिया गया था। अपने परिवार के भिन्न भिन्न सदस्यों की ओर से उसने दान के योग्य व्यक्तियों को दान देनेकी प्रथा प्रचलित की थी। एक लघु-स्तम्भ-लेख में उसने अपने महामात्रों को आदेश दिया है कि उसकी दूसरी रानी कारुवकी अर्थात् तीवर की माता ने जो कुछ दान दिया है वह उसी रानी का दान गिना जाना चाहिए। एक दन्तकथा में कहा गया है कि अशोक ने अपना सब कुछ, जो वह दे सकता था, संघ को दे दिया था और आप एक अधिकार-हीन तथा धन-हीन दशा में मृत्यु को प्राप्त हुआ था।

अशोक ने इस बात को स्वीकार किया है कि प्रजा से भूमि की पैदावार का जो षष्ठांश, कर के रूप में लिया जाता है वह ऋण के रूप में है और उस ऋण का

पालना राजा का कर्त्तव्य है। इसका तात्पर्य यह है कि राजा प्रजा की रक्षा करे। परन्तु अशोक ने बारम्बार अपने धर्मलेखों में कहा है कि मैं अपनी प्रजा को इस लोक में तथा परलोक में सुखी बनाना चाहता हूँ। उसने तो यहाँ तक कहा है कि मेरी सब प्रजा, चाहे वह किसी सम्प्रदाय या जाति की हो, मेरे पुत्र के समान है। प्रजा का काम हर समय और हर जगह शीघ्रता से हो, ऐसी प्रणाली उसने स्थापित की थी। यद्यपि वह बौद्ध धर्मानुयायी था, तथापि वह कभी दूसरे धर्म की निन्दा नही करता था और न दूसरे धर्मो पर कोई अत्याचार होने देता था। अशोक के बारहवें शिलालेख से प्रकट है कि वह सब सम्प्रदायो के साथ समान व्यवहार करता था और सब सम्प्रदाय के लोगों से उसका कहना यही था कि सब एक दूसरे के मत का आदर करें। वह निश्चित रूप से अपने सम्प्रदाय की प्रशंसा तथा दूसरे सम्प्रदायों की निन्दा करने के विरुद्ध था और इस सम्बन्ध में उसने लोगों को वाक्संयम की शिक्षा दी है। उसने अपने साम्राज्य के सब भागों में बसने वाले लोगों को आपस में मेलजोल से रहने की सलाह दी है। उसने अपने धर्म-लेख में यह भी घोषित किया है कि सब सम्प्रदायों के लोगों में उन उन सम्प्रदायों के सार (तत्व) की वृद्धि हो। ऐसी विचार की उदारता निःसन्देह विलक्षण और स्मरण रखने योग्य है। अशोक की सम्मति में आत्म-संयम और विचार-शुद्धि की कामना सब सम्प्रदायों में समान रूप से पायी जाती है। षष्ठ स्तम्भलेख में उसने लिखा है कि मैं सब समाजों के लोगों के हित और सुख का ध्यान रखता हूँ तथा सब सम्प्रदायों के लोगों का आदर-सत्कार करता हूँ। उसका यह विचार था कि दूसरे सम्प्रदायों का आदर करने से धर्म का आदर और उसकी वृद्धि होगी और साथ ही सब सम्प्रदायों का भी आदर और उन्नति होगी। वह ब्राह्मणों और बौद्ध श्रमणों में कोई भेद नहीं करता था और जैसा कि उसके पंचम शिलालेख तथा स्तम्भलेख से प्रकट है, उसके धर्म-महामात्र नामक कर्मचारी, शूद्र, वैश्य, ब्राह्मण और क्षत्रिय तथा श्रमण, आजीविक और निर्ग्रन्थ (जैन) आदि सब सम्प्रदायों और सब वर्गो के हित और सुख को सम्पन्न करने के लिए नियुक्त थे। सब लोगों के साथ उसका निष्पक्षता का व्यवहार विहार के गया जिले में बराबर पहाड़ी पर दो कृत्रिम गुफाओं से प्रकट है, जिनको उसने आजीविक सम्प्रदाय के साधुओं के लिए निर्मित कराया था।

५—लोकहित सम्बन्धी कार्य

अशोक द्वारा प्रचारित धर्म के अनुसार ही उसकी नीति भी थी, जिसके अनुसार वह न केवल अपनी ही प्रजा के हित और सुख का वरन अपने साम्राज्य की सीमा के बाहर अन्य देशों के लोगों के हित और सुख का भी ध्यान रखता था, मानो मनुष्य मात्र उसकी ही सन्तान हों। परोपकार के सम्बन्ध में वह मनुष्यों और पशुओं के बीच भी अधिक भेदभाव नहीं रखता था।

उसने मनुष्यों और पशुओं की चिकित्सा के लिए अलग अलग प्रबन्ध कर रक्खा था और न केवल अपने साम्राज्य के भीतर वरन साम्राज्य के बाहर अनेक विदेशों में, विशेषकर पश्चिम और दक्षिण के देशों में, उसके द्वारा औषधियाँ लायीं और रोपी गयीं तथा मूल और फल के वृक्ष भी जहाँ नहीं थे वहाँ लाये और रोपे गये। उसने सड़कों पर मनुष्यों और पशुओं को छाया देने के लिए बरगद के पेड़ लगवाये, आम्र वृक्षों की बाटिकाएँ लगवायीं, आठ आठ कोस पर कुएं खुदवाये और मनुष्यों तथा पशुओं के लिए स्थान स्थान पर पौंसले बैठाये। अपने शासन के प्रथम २६ वर्षों के अन्दर उसने २५ बार बन्दियों को कारागार से मुक्त करने का आदेश दिया। चतुर्थ स्तम्भलेख के अनुसार उसने पुरस्कार अथवा दण्ड देने का अधिकार जिले के शासकों के हाथ में दे दिया था, जिससे कि वे निश्चिन्त होकर अपना कर्त्तव्य पालन करें तथा न्याय करने में कोई पक्षपात न करें। उसने अपने न्याय-विभाग के अफसरों को ईर्ष्या, क्रोध, निष्ठुरता, जल्दबाजी, आलस्य और तन्द्रा आदि दोषों से दूर रहने का आदेश दे रक्खा था। उसने यह भी आदेश दिया था कि कारागार में पड़े हुए जिन मनुष्यों को मृत्यु का दण्ड निश्चित हो चुका है, उनको तीन दिन की मोहलत दी जाये, जिसमें कि इस मोहलत के भीतर वे अपने जीवन-दान के लिए न्याय-विभाग से पुनर्विचार की प्रार्थना कर सकें या दण्ड का रुपया भरकर मुक्ति करा सकें अथवा मुक्ति न होने पर उनके कुटुम्ब वाले उनके पारलौकिक सुख और शांति के लिए दान, उपवास, व्रत आदि कर सकें। इन सब कार्यों से सूचित होता है कि अशोक अपनी प्रजा के न केवल इस लोक में हित और सुख के लिए वरन धर्माचरण के प्रचार के द्वारा उनके पारलौकिक हित और सुख के लिए भी चिन्ता करता था। वह जो कुछ भी लोकहित का कार्य करता था उसको वह धर्म का आचरण समझकर करता था और आशा करता था कि लोग पुण्य का कार्य

करने में उसका अनुकरण करेंगे। उसने अपने एक धर्मलेख में यह भी दावा किया है कि मेरे धर्म के प्रचार से लोगों में सदाचार की ऐसी वृद्धि हुई है कि वे देवताओं से मिलने के योग्य बन गये हैं। उसने सन्तोष के साथ यह भी लिखा है कि इस धर्म के प्रचार में जो सफलता उसे मिली है, वह पिछले कई सौ वर्षों से किसी को नहीं मिली थी, यद्यपि पिछले समय के धर्मिष्ठ राजाओं ने अनेक दिव्य और आकर्षक प्रदर्शनों के द्वारा लोगों में धर्म, सत्कर्म तथा स्वर्ग-प्राप्ति के प्रति प्रेम उत्पन्न करने की अनेक चेष्टाएँ की थीं।

६—धर्म का प्रचार

अपने विस्तृत साम्राज्य के प्रत्येक भाग में सब सम्प्रदायों तथा सब प्रकार के लोगों में धर्म का प्रचार करने के लिए अशोक ने अपने अनुशासन या धर्म-लेख भिन्न-भिन्न स्थानों पर शिलाओं तथा स्तम्भों पर खुदवा दिये थे, धर्म-महामात्र नामक उच्च कर्मचारी नियुक्त किये थे तथा अपने भिन्न-भिन्न अधिकारियों को एक-एक वर्ष पर या तीन-तीन वर्ष पर या पांच-पांच वर्ष पर, धर्म का उपदेश देते हुए दौरा करने का आदेश भी दिया था। वह स्वयं भी इसी उद्देश्य से धर्म-यात्रा या तीर्थ-यात्रा पर निकलता था। उसके धर्म-महामात्र नामक राजकर्मचारी सब सम्प्रदायों और सब जातियों के बीच, गृहस्थों, भिक्षुओं, ब्राह्मणों, बौद्धों, आजीविकों और निर्ग्रन्थों (जैनों) आदि के बीच, धर्म की स्थापना और वृद्धि के लिए, सदा रत रहते थे। अशोक स्वयं तथा उसके राजकर्मचारी जब जब अवसर मिलता था तब तब लोगों को धर्म का उपदेश देने से नहीं चूकते थे। रज्जुक नामक कर्मचारियों को विशेष रूप से इस बात का आदेश था। अशोक ने दक्षिण तथा पश्चिम के अनेक पड़ोसी देशों में अपने धर्म के सिद्धांतों का प्रचार करने के लिए राजदूत भी भेजे थे। कई विद्वानों ने पश्चिमी एशिया पर और विशेषकर के वहाँ के प्रचलित धर्म पर बौद्ध धर्म का जो प्रभाव पड़ा, उसकी खोज की है। यह उस क्षेत्र में अशोक द्वारा धर्म के प्रचार ही का परिणाम माना जाता है। बौद्ध दन्तकथाओं में बंगाल की खाड़ी के पार लंका और सुवर्ण भूमि में अशोक द्वारा भेजे गये मिशनों या धर्मप्रचारकों का वर्णन मिलता है।

सप्तम स्तम्भलेख में अशोक ने कहा है कि मनुष्यों में धर्म की वृद्धि दो उपायों से हुई है। एक उपाय तो यह है कि मनुष्यों को नियमों या कानूनों के द्वारा अमुक-अमुक कार्य करने से रोका जाय जैसे कि अमुक अमुक प्राणी न मारे जायें इत्यादि। दूसरा उपाय यह है कि विचार-परिवर्तन द्वारा मनुष्यों को धर्म के अनुसार आचरण करने के लिए प्रेरित तथा प्रोत्साहित किया जाय। परन्तु अशोक के मत में दूसरा *उपाय अधिक महत्त्व का तथा अधिक* प्रभावशाली है। इस प्रकार अशोक कदाचित् *संसार के उन थोड़े से राजनीतिज्ञों में गिना जायगा, जिन्होंने यह अनुभव किया कि* लोगों की भावनाओं और विचारों में परिवर्तन लाने के लिए कानून की अपेक्षा प्रचार अधिक महत्वपूर्ण और प्रभावशाली है।

अशोक की एक विशेषता यह भी थी कि वह कोई ऐसा उपदेश या शिक्षा नहीं देता था जिसे वह स्वयं कार्य में नहीं लाता था। जब प्रथम शिलालेख खुदवाया गया उस समय भी उसकी पाकशाला में तीन जीव मारे जाते थे—उसका यह स्वीकार करना उसकी एक विलक्षणता है। उसकी असाधारण स्पष्टवादिता तथा सत्य-प्रेम का ही परिणाम है कि उसने प्रथम शिलालेख में यह कहा कि मेरी पाक-शाला में पहले प्रतिदिन कई हजार जीव मारे जाते थे, पर अब केवल तीन ही जीव प्रतिदिन मारे जाते हैं और आगे से यह तीनों जीव भी नहीं मारे जाएंगे।

इसमें कोई संदेह नहीं है कि अशोक भिन्न-भिन्न धार्मिक सम्प्रदायों के प्रति बिलकुल निष्पक्षता का व्यवहार करता था और कभी भी किसी की धार्मिक भावनाओं को ठेस नहीं पहुँचाता था। वह जीव-रक्षा और जीव-दया पर विशेष बल देता था और ऐसा प्रतीत होता है कि वह धर्म के नाम पर भी किसी प्राणी की हत्या का विरोधी था। वह कुछ प्रचलित रीति-रिवाजों को भी नापसन्द करता था और उनकी समालोचना करता था। अतएव संभव है कि उसके कुछ आदेशों को कुछ सम्प्रदायों ने अपने स्वाभाविक अधिकारों पर हस्तक्षेप समझा हो। इसके अतिरिक्त उन आदेशों के अनुसार काम करना तत्सम्बन्धी कर्मचारियों के ही हाथ में था और यह विश्वास करना कठिन है कि अपने स्वामी के आदेशों के विपरीत उनमें से कुछ ने, अवसर प्राप्त होने पर, लोगों के साथ कभी कभी अतिशयता का व्यवहार न किया हो।

७–अशोक की महानता

अशोक कई दृष्टियों से अद्भुत प्रतिभाशाली व्यक्ति और संसार के इतिहास में महान् से महान् तथा असाधारण पुरुषों में था। वह साथ ही एक महान् विजेता, निर्माता, राजनीति-विशारद, शासक, धर्म और समाजसुधारक, दार्शनिक और सन्त पुरुष था। संसार की आध्यात्मिक विजय के लिए उसने जिस मिशन अथवा प्रचारक-मण्डल का संगठन किया था, उसने एक छोटे से साम्प्रदायिक धर्म को संसार के एक महान् धर्म में परिवर्तित कर दिया था। उसने सैनिक विजय का त्याग किसी पराजय के बाद नहीं, बल्कि कलिंग के शक्तिशाली लोगों पर एक बड़ी विजय पाने के बाद किया और एक बड़े शक्तिशाली साम्राज्य के अटूट साधनों से सम्पन्न होते हुए भी उसने पड़ोसी राज्यों के साथ सहनशीलता की नीति का अनुसरण किया था। उसमें असाधारण तेजस्विना, योग्यता, उत्साह और संगठन-शक्ति का गुण था और जितनी उसमें उदारता और धैर्य की मात्रा थी उतनी ही उसमें अपने उद्देश्य के लिए सच्चाई भी थी। अशोक की धार्मिकता और बिना जातपांत और साम्प्रदायिक भेदभाव के, अपनी सब प्रजा के साथ उदारता और निष्पक्षता का व्यवहार कई पीढ़ियों तक भारत के बाद के धार्मिक राजाओं के सामने आदर्श बना रहा और उन पर अच्छा प्रभाव डालता रहा।

परन्तु अशोक के पहले जो बड़े-बड़े साम्राज्य-निर्माता हुए और जिनकी बदौलत मगध दक्षिणी बिहार के एक छोटे से राज्य से बढ़कर एक महान् साम्राज्य हो गया (जिसमें, भारत, पाकिस्तान, अफगानिस्तान के अधिकतर भाग सम्मिलित थे) वे अशोक की इस नीति को कभी पसन्द न करते, जिसका अनुसरण करके अशोक ने अपने राजकर्मचारियों को धर्म-प्रचारक बना दिया, सैनिक अभ्यासों और विजयों को त्याग कर, कलहकारी और उपद्रवी जातियों को, विशेषकर पश्चिमोत्तर सीमावर्ती जातियों को, धर्मप्रचारकों की देखभाल में छोड़ दिया और साम्राज्य के समस्त साधनों को परोपकार, दान तथा धार्मिक प्रचार में लगा दिया। वे लोग अशोक की इस नीति को कभी भी एक व्यवहारकुशल राजनीतिज्ञ की बुद्धिमत्ता न समझते और एक आदर्शवादी का स्वप्न कह कर इसकी उपेक्षा करते। वास्तव में अशोक का शक्तिशाली हाथ हट जाने के बाद, उसके उत्तराधिकारियों में यह शक्ति न रही कि वे साम्राज्य के छिन्न-भिन्न तथा दूरवर्ती प्रांतों को धीरे धीरे

स्वाधीन राज्य होने से रोक सकते। मगध की जिस सैनिक शक्ति ने, चन्द्रगुप्त मौर्य के समय में, पश्चिमी एशिया के स्वामी सेल्युकस की प्रबल सेना को मार भगाया था, वही सैनिक शक्ति अशोक के उत्तराधिकारियों के समय में इतनी निर्बल हो गयी कि बैक्ट्रिया के यूनानी राजाओं के आक्रमण को रोकने में असमर्थ रही, जिसका परिणाम यह हुआ कि यूनानी राजाओं की सेना उत्तरी भारत के मैदानों को पार करती हुई पूर्व में पाटलिपुत्र तक आ पहुंची।

परन्तु इससे यह सिद्ध नही होता कि अशोक की शांतिपूर्ण नीति, संसार को दुःख और कलह से मुक्त करने के लिए, बुद्ध तथा अन्य अनेक धार्मिक नेताओं के प्रयत्नों के समान, बिल्कुल असफल रही। बीसवीं शताब्दी के संसारव्यापी दो महायुद्धों ने सम्भवतः यह स्पष्ट कर दिया है कि अशोक, शस्त्र द्वारा देशों की विजय की निंदा करने तथा मनुष्यों के हृदयों को प्रेम द्वारा विजय की प्रशंसा करने में, सही रास्ते पर था। वह एक ऐसे संसार का स्वप्न देखता था जिसमें सब लोग एक ही परिवार के सदस्यों के समान मेलजोल से रहें। संभव है उस स्वप्न का पूरा होना अभी दूर की बात हो। परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि लोग शनैः शनैः उसके निकट आ रहे हैं।

८—अशोक के धर्मलेख

अशोक के धर्मलेख प्राकृत भाषा में लिखे हुए हैं। अशोक-साम्राज्य के पश्चिमोत्तर प्रदेश में जो लेख मानसेहरा और शाहबाजगढ़ी में हैं, उनकी लिपि खरोष्ठी है, परन्तु इन दो को छोड़कर और जितने लेख हैं सब ब्राह्मी लिपि में हैं। खरोष्ठी पश्चिमी एशिया की एरमेइक लिपि का ही रूपान्तर है और इसका प्रचार भारतवर्ष के उत्तरापथ प्रदेश में तब हुआ जब वह प्रदेश सिकन्दर के आक्रमण के पूर्व दो शताब्दियों तक फारस के एकमेनियन राजाओं के अधिकार में था। खरोष्ठी लिपि फारसी लिपि की तरह दाहिनी ओर से बाईं ओर को लिखी जाती है। खरोष्ठी कुछ शताब्दियों के बाद आप ही अपनी मृत्यु से मर गयी, क्योंकि वह संस्कृत या प्राकृत भाषाओं को लिखने में समर्थ न थी। ब्राह्मी लिपि संभवतः सिन्धु घाटी की उस प्रागैतिहासिक लिपि से निकली है जो अर्द्ध-चित्रसंकेत के रूप में थी। ब्राह्मी

लिपि का प्रचार भारतवर्ष के अधिकतर भाग में था। ब्राह्मी लिपि न केवल वर्तमान भारत के भिन्न भिन्न भागों में प्रचलित, संस्कृत तथा द्राविड़ से निकली हुई, अनेक लिपियों की जननी है, वरन् दक्षिण पूर्वी एशिया में तिब्बती, सीलोनी, बर्मी तथा जावानी आदि अनेक लिपियाँ भी उसी से निकली है। खरोष्ठी और ब्राह्मी के अतिरिक्त एरेमेइक लिपि में भी एक खण्डित शिलालेख पश्चिमी पाकिस्तान के रावलपिण्डी जिले में टैक्सिला (तक्षशिला) से प्राप्त हुआ है, जो अशोक का कहा जाता है, परन्तु इसमें सन्देह है।

अशोक के धर्मलेख मोटे तौर पर दो भागों में बांटे जा सकते हैं—एक तो वह जो शिलाओं या चट्टानों पर खुदे हुए है और दूसरे वह जो पत्थर के स्तंभों पर खुदे हुए है। शिलाओं पर खुदे हुए लेख भी तीन भागों में विभाजित किए जा सकते हैं—एक शिलालेख, दूसरे लघु शिलालेख, तीसरे गुफालेख। स्तंभलेख भी दो भागों में बांटे जा सकते है—एक स्तंभलेख, दूसरे लघु स्तंभलेख।

षष्ठ स्तंभलेख से पता चलता है कि अशोक ने अपने धर्मलेख राज्याभिषेक (२६९ ई० पू०) के बारह वर्ष बाद या लगभग २५७ ई० पू० से लिखवाना प्रारम्भ किया था। सबसे पहले उसने लघु शिलालेख लिखवाये। उसके कुछ समय बाद चतुर्दश शिलालेख खुदवाये। तेरहवें शिलालेख में अशोक के शासन के नवें वर्ष का तथा आठवें शिलालेख में उसके शासन के ग्यारहवें वर्ष का उल्लेख मिलता है। यह उल्लेख अशोक के जीवन की कुछ पूर्व घटनाओं के सम्बन्ध में है। तृतीय और चतुर्थ शिलालेख शासन के तेरहवें वर्ष में तथा पंचम शिलालेख अशोक-शासन के चौदहवें वर्ष में जारी किये गये। तीन गुफालेखों में प्रथम और द्वितीय गुफालेख शासन के तेरहवें वर्ष में और तृतीय गुफालेख राज्य-शासन के २०वें वर्ष में लिखवाये गये।

लघु स्तंभलेखों में कोई तिथि नहीं दी हुई है। दो स्तंभलेख राज्य-शासन के २१वें वर्ष में खुदवाये गये थे, यद्यपि उनमें से एक में ऐसी घटना का उल्लेख है जो अशोक के शासन के १५वें वर्ष में हुई थी। प्रथम, चतुर्थ, पंचम और षष्ठ स्तंभलेख राज्य शासन के २७वें वर्ष में तथा सप्तम स्तंभलेख उसके शासन के २८वें वर्ष में लिखवाये गये थे। परन्तु षष्ठ स्तंभलेख में भी एक ऐसी पूर्व घटना का उल्लेख है जो शासन के १३वें वर्ष में घटित हुई थी।

९-शिलाओं पर लेख

लघु शिलालेख—अशोक का लघु शिलालेख निम्नलिखित स्थानों पर पाया गया है:—

१. जयपुर (राजस्थान) जिले के बैराट नामक स्थान पर।
२. हैदराबाद के रायचूर जिले में कोपवल के पास गवीमठ में।
३. विंध्य प्रदेश के दतिया जिले में गुजर्रा नामक स्थान पर।
४. हैदराबाद के रायचूर जिले में मास्की नामक स्थान पर।
५. हैदराबाद के रायचूर जिले में गवीमठ के पास पाल्की गुण्डू में।
६. मध्यप्रदेश के जबलपुर जिले में रूपनाथ नामक स्थान पर।
७. बिहार के शाहाबाद जिले में सहसराम नामक स्थान पर।

लघु शिलालेख की एक विचित्रता यह है कि इसका पाठ सब स्थानों में एक-सा नहीं है। कहीं कहीं तो पूरा पाठ और कहीं कहीं आधा ही पाठ पाया जाता है। एक ही प्रकार का लघु शिलालेख मैसूर के चीतलद्रुग जिले में ब्रह्मगिरि, जटिंग रामेश्वर और सिद्धपुर नामक स्थानों में तथा आन्ध्र राज्य के कुर्नूल जिले में येर्रा-गुडी और राजुल मन्दगिरि नामक स्थानों में पाया गया है। परन्तु इन स्थानों में एक दूसरा लेख और भी उस लेख के साथ जुड़ा हुआ मिलता है, जो उत्तरी भारत तथा हैदराबाद में ऊपर लिखे हुए सात स्थानों में पाया जाता है। यह शिलालेख द्वितीय लघु शिलालेख के नाम से भी प्रसिद्ध है। इसका पाठ भी कई स्थानों पर कुछ भिन्न भिन्न है। मैसूर के स्थानों में पाये जाने वाले लघु शिलालेख के पाठ में तथा कुर्नूल जिले में पाये जाने वाले लघु शिलालेख के पाठ में एक दूसरेसे अन्तर विशेष रूप से पाया जाता है। मैसूर के तीन स्थानों में जो लघु शिलालेख मिलता है उस के प्रारम्भिक वाक्य से पता चलता है कि यह शिलालेख इसिला (वर्तमान सिद्धपुर) के महामात्रों को, सुवर्ण गिरि (येर्रागुडी के पास वर्तमान जोन्नगिरि) में स्थित आर्यपुत्र (जो कदाचित् राज-प्रतिनिधि के रूप में अशोक के पुत्रों में से कोई था) और वहाँ के महामात्रों की ओर से सम्बोधित किया गया था। बैराट में प्रथम लघु शिलालेख के नाम से जो लेख है उसके अतिरिक्त एक तीसरा लघु शिलालेख और भी पाया जाता है। जिस पत्थर पर यह तीसरा लघु शिलालेख खुदा हुआ है वह कलकत्ता की एशियाटिक सोसायटी में सुरक्षित है। प्रथम और द्वितीय लघु शिलालेख

अशोक के द्वारा अपने महामात्रों को संबोधित करके लिखवाये गये हैं, परन्तु तीसरा लघु शिलालेख भिक्षुओं को सम्बोधित करके लिखा गया है। इस धर्मलेख की शैली अशोक के अन्य धर्मलेखों की शैली से भिन्न है।

चतुर्दश शिलालेख :—अशोक के शिलालेख, जो चतुर्दश शिलालेख के नाम से प्रसिद्ध हैं, निम्नलिखित स्थानों में पाये गये हैं:—

१. आन्ध्र के कुर्नूल जिले में येर्रागुडी नामक स्थान पर।

२. सौराष्ट्र (काठियावाड़) में जूनागढ़ के पास गिरनार में।

३. उत्तरप्रदेश के देहरादून जिले में कालसी नामक स्थान पर।

४. पश्चिमी पाकिस्तान के हज़ारा जिले में मानसेहरा नामक स्थान पर।

५. पश्चिमी पाकिस्तान के पेशावर जिले में शाहबाज़गढ़ी नामक स्थान पर।

६. बम्बई राज्य के थाना जिले में सोपारा नामक स्थान पर।

कई स्थानों पर ये लेख सुरक्षित अवस्था में नहीं है। चतुर्दश शिलालेख के केवल कुछ टुकड़े ही सोपारा के पास पाये गये हैं। पत्थर के जिन टुकड़ों पर वह खुदे हुए हैं उनको बम्बई ले जाकर "रायल एशियाटिक सोसायटी" और "प्रिन्स आफ वेल्स म्यूज़ियम" में सुरक्षित रख दिया गया है। गिरनार की जिस चट्टान पर चतुर्दश शिलालेख खुदा हुआ है उसी पर बाद के दो और रोचक शिलालेख खुदे हुए हैं। ये हैं सन् १५० ईस्वी का शक रुद्रदामन् का शिलालेख तथा सन् ४५५–५७ ईस्वी का स्कन्दगुप्त का शिलालेख। इन दोनों शिलालेखों में सुदर्शन नामक झील पर एक बांध के पुनर्निर्माण का उल्लेख मिलता है। परन्तु रुद्रदामन् वाले शिलालेख में झील का पूर्व इतिहास वर्णन करते हुए यह भी कहा गया है कि किस प्रकार चन्द्रगुप्त मौर्य के शासन-काल में राष्ट्रिय पुष्यगुप्त के द्वारा यह निर्माण कराया गया और किस प्रकार अशोक मौर्य की ओर से युवराज तुषास्फ के द्वारा इससे से सिंचाई के लिए नहरें निकाली गयीं।

चतुर्दश शिलालेख पुरी जिले के धौली नामक स्थान में और गंजाम जिले के जौगढ़ नामक स्थान मे भी पाये जाते हैं। ये दोनों स्थान उड़ीसा में हैं। परन्तु इन दोनों स्थानों पर चतुर्दश शिलालेख के ११वें, १२वें और १३वें शिलालेख के स्थान पर दो अतिरिक्त शिलालेख पाये जाते हैं। ये दोनों अतिरिक्त शिलालेख विशेष रूप से कलिंग के लोगों और वहाँ नियुक्त अफसरों या राज्याधिकारियों के लिए लिखे गये थे। जैसा कि पहले कहा जा चुका है कलिंग की विजय अशोक ने

अपने शासन के नवें वर्ष में की थी। जिस पहाड़ी की चट्टान पर जौगढ़ का शिलालेख खुदा हुआ है, उसको प्राचीन काल में खेपिंगल पर्वत के नाम से पुकारते थे।

गुफालेख :—बिहार में गया से लगभग १५ मील उत्तर की ओर, बराबर की पहाड़ी पर, जिसको प्राचीन काल में स्खलतिक पर्वत के नाम से कहते थे, चार कृत्रिम गुफाएँ हैं, जिनमें से तीन में अशोक के शिलालेख खुदे हुए मिलते हैं। जैसा कि उन शिलालेखों से विदित होता है, इनमें दो गुफाएँ अशोक द्वारा आजीविक सम्प्रदाय को प्रदान की गयीं थीं। उसी पहाड़ी के एक दूसरे भाग में जिसको नागार्जुनी पहाड़ी कहते हैं, ऊपर लिखी हुई गुफाओं से एक मील की दूरी पर, तीन और गुफाएँ हैं, जिनमें भी शिलालेख खुदे हुए हैं। ये शिलालेख अशोक के पोते "देवताओं के प्रिय" दशरथ के हैं। ये शिलालेख भी आजीविक नामक भिक्षुओं के लिए समर्पित किये गये थे। अशोक के शिलालेख जिन तीन गुफाओं में हैं उनके पास वाली चौथी गुफा में मौखारी राजा अनन्तवर्मन् का एक शिलालेख खुदा हुआ मिलता है। यह राजा ईस्वी सन् की पांचवीं शताब्दी में हुआ था।

१०—अशोक के स्तम्भलेख

लघु स्तम्भलेख :—इलाहाबाद में किले के अन्दर अशोक का जो स्तम्भ खड़ा हुआ है वह प्रारम्भ में प्राचीन कौशाम्बी नगरी (वर्तमान कोसम) में स्थापित किया गया था और इसलिए उसको प्रायः इलाहाबाद-कोसम स्तम्भ के नाम से कहा जाता है। उस पर अशोक के ६ प्रसिद्ध स्तम्भलेखों के अतिरिक्त उसके दो और लेख भी पाये जाते हैं। इन दो लेखों में से एक लेख भोपाल रियासत में सांची नामक स्थान पर तथा उत्तर प्रदेश में बनारस के पास सारनाथ में भी पाया गया है। दुर्भाग्य से इन शिलालेखों के अक्षर सन्तोष-जनक रीति से सुरक्षित नहीं हैं। इस शिलालेख का पाठ तीनों स्थानों पर एक दूसरे से कुछ भिन्न है। सारनाथ के लघु शिलालेख में तो उसके साथ एक नया लेख ही जुड़ा हुआ है। इलाहाबाद-कोसम के स्तम्भ पर एक दूसरा लघु शिलालेख है, जिसको "रानी का लेख" कहा गया है, क्योंकि इसमें अशोक की एक रानी के दान का उल्लेख है।

अशोक के दो लघु स्तम्भलेख उत्तर प्रदेश के बस्ती जिले के उत्तर में नेपाल की तराई में पाये गये हैं। इनमें से एक स्तम्भ परारिया ग्राम के समीप रुम्मिनदेई के मन्दिर के निकट खड़ा है। यह स्थान बस्ती जिले के दुल्हा ग्राम से लगभग पांच मील पर और नेपाल की भगवानपुर तहसील से लगभग दो मील पर है। दूसरा स्तम्भ निग्लीव ग्राम के समीप निगली सागर नामक एक बड़े सरोवर तट पर खड़ा हुआ है। यह स्थान रुम्मिनदेई से लगभग तेरह मील पश्चिमोत्तर की ओर है। ये दोनों स्तम्भ-लेख इन स्थानों में अशोक की यात्रा के स्मारक के रूप में हैं। इनमें से पहला स्थान इसलिए पवित्र माना गया है कि वहाँ बुद्ध भगवान् पैदा हुए थे और दूसरे स्थान का महत्व इस कारण है कि वहाँ कनकमुनि बुद्ध के अवशेषों पर एक स्तूप बनवाया गया था। कनकमुनि बुद्ध बौद्धों द्वारा एक पूर्वकालीन बुद्ध के रूप में माने जाते हैं।

सप्त स्तम्भलेख :—अशोक के ६ धर्मलेख जिन पर खुदे हुए हैं ऐसे ठोस पत्थर के बने हुए स्तम्भ, उत्तर प्रदेश में मेरठ और इलाहाबाद में तथा बिहार के चम्पारन जिले में राधिया के पास लौडिया अराराज में, मठिया के पास लोडिया नन्दनगढ़ में तथा रामपुरवा में पाये गये हैं। इन भिन्न-भिन्न स्थानों के स्तम्भों पर धर्मलेख का पाठ आमतौर पर एक ही सा है, यद्यपि उनमें से कई लेखों के अक्षर संतोष-जनक सुरक्षित अवस्था में नहीं हैं। एक दूसरा स्तम्भ पूर्वी पंजाब में अम्बाला और सिरसा के बीच टोपरा के पास पाया गया है, जिस पर ६ स्तम्भलेखों के साथ साथ एक सप्तम स्तम्भलेख भी जुड़ा हुआ है। टोपरा का यह स्तम्भ और मेरठ वाला स्तम्भ दोनों फीरोजशाह तुगलक के द्वारा वहाँ से हटा कर दिल्ली में स्थापित किये गये थे। जैसा कि ऊपर कहा गया है, इलाहाबाद वाला स्तम्भ प्रारम्भ में कौशाम्बी (वर्तमान कोसम) में था, जो इलाहाबाद से लगभग तीस मील पर एक छोटा-सा गांव है। परन्तु यह पता नहीं चला कि यह कौशाम्बी से कब और किसके द्वारा इलाहाबाद को लाया गया। इलाहाबाद-कोसम के स्तम्भ पर ६ स्तम्भलेखों के अतिरिक्त अशोक के दो और लेख खुदे हुए हैं, जो "रानी का स्तम्भलेख" तथा "कौशाम्बी का स्तम्भलेख" इस नाम से प्रसिद्ध हैं और जिनका उल्लेख लघु स्तम्भलेख के रूप में ऊपर हो चुका है। इलाहाबाद के स्तम्भ पर एक रोचक लेख और भी खुदा हुआ पाया जाता है। यह प्रसिद्ध लेख ईस्वी सन् की चौथी शताब्दी के गुप्तवंशीय सम्राट् समुद्रगुप्त की प्रशंसा में है। इन प्राचीन लेखों के

अक्षरों को बाद में खोदे जाने वाले लेखों से हानि पहुँची है। ये बाद के लेख अधिकतर व्यक्तिगत लेखों के रूप में है, जैसा कि प्रायः यात्री लोग खोद दिया करते हैं। परन्तु उनमें एक फारसी का लेख भी है, जिसे मुग़ल बादशाह जहाँगीर (१६०५-२७ ई०) ने खुदवाया था।

अशोक के धर्मलेख

(अशोक के शिलालेखों, स्तंभलेखों और गुहालेखों का संग्रह)

अशोक के धर्मलेख

चट्टानों पर खुदे हुए चतुर्दश शिलालेख

(अशोक के चतुर्दश शिलालेख गिरनार, कालसी, मानसेहरा, शाहबाज़गढ़ी और येर्रागुडी में पाये जाते हैं। सोपारा में केवल अष्टम और नवम शिलालेखों के कुछ टुकड़े ही मिलते हैं। धौली और जौगढ़ में प्रथम शिलालेख से दशम शिलालेख तक तथा चौदहवां शिलालेख पाये गये हैं। परन्तु इन दोनों स्थानों में ग्यारह से लेकर तेरहवें शिलालेख के स्थान पर दो विशेष शिलालेख हैं, जो अतिरिक्त शिलालेख के नाम से प्रसिद्ध हैं)

गिरनार पर्वत की चट्टान पर खुदा हुआ प्रथम शिलालेख

यह धर्मलेख देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा (अशोक) ने लिखवाया है। यहाँ (मेरे राज्य में) कोई जीव मार कर होम न किया जाय और समाज (मेला, उत्सव या गोष्ठी जिसमें हिंसा आदि होती हो) न किया जाय। क्योंकि देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा समाज (मेले, उत्सव) में बहुत से दोष देखते हैं। परन्तु एक प्रकार के ऐसे समाज (मेले, उत्सव) हैं जिन्हें देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा अच्छा समझते हैं। पहले देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा की पाकशाला में प्रतिदिन कई हजार जीव सूप (शोरबा) बनाने के लिए मारे जाते थे। पर अब जबकि यह धर्मलेख लिखा जा रहा है केवल तीन ही जीव प्रतिदिन मारे जाते हैं—दो मोर और एक मृग[1], पर मृग का मारा जाना निश्चित नहीं है। यह तीनों प्राणी भी भविष्य में नहीं मारे जायेंगे।

---

१. कोई कोई "मृग" को पशु तथा "मोर" को पक्षी के अर्थ में लेते हैं और इस वाक्य का अर्थ इस प्रकार करते हैं—"पर अब जब कि यह धर्मलेख लिखा जा रहा है केवल तीन ही जीव प्रतिदिन मारे जाते हैं, 'दो पक्षी और एक पशु'।"

गिरनार का द्वितीय शिलालेख

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा के राज्य में सब जगह तथा जो सीमावर्ती राज्य हैं जैसे चोड़, पांड्य, सत्यपुत्र, केरलपुत्र, ताम्रपर्णी (लंका) तक और अन्तियोक नामक यवनराज और जो उस अन्तियोक के पड़ोसी राजा हैं उन सब के देशों में देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने दो प्रकार की चिकित्सा का प्रबन्ध किया है—एक मनुष्यों की चिकित्सा के लिए और दूसरा पशुओं की चिकित्सा के लिए। औषधियाँ भी मनुष्यों और पशुओं के लिये जहाँ-जहाँ नहीं थीं वहाँ-वहाँ लायी और रोपी गयी हैं। इसी तरह मूल और फल भी जहाँ-जहाँ नहीं थे वहाँ-वहाँ सब जगह लाये और रोपे गये हैं। मार्गों में पशुओं और मनुष्यों के आराम के लिए कुएँ खुदाये गये हैं और वृक्ष लगाये गये हैं।

गिरनार का तृतीय शिलालेख

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहते हैं:—राज्याभिषेक के बारह वर्ष बाद मैंने यह आज्ञा दी है कि मेरे राज्य में सब जगह युक्त, रज्जुक और प्रादेशिक नामक राज-कर्मचारी पांच-पांच वर्ष पर इसी काम के लिए अर्थात् धर्म की शिक्षा देने के लिए तथा और और कामों के लिए (यह प्रचार करते हुए) दौरा करें—"माता-पिता की सेवा करना अच्छा है; मित्र, परिचित, स्वजातिवालों तथा ब्राह्मण और श्रमण को दान देना अच्छा है; जीवहिंसा न करना अच्छा है; थोड़ा व्यय करना और थोड़ा संचय करना अच्छा है।" (आमात्यों की) परिषद् भी युक्त नामक कर्मचारियों को आज्ञा देगी कि वे इन नियमों के वास्तविक भाव और अक्षर के अनुसार इनका पालन करें।

गिरनार का चतुर्थ शिलालेख

अतीत काल में—कई सौ वर्षों से—प्राणियों का वध, जीवों की हिंसा, बन्धुओं का अनादर तथा श्रमणों और ब्राह्मणों का अनादर बढ़ता ही गया। पर आज देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा के धर्माचरण मे भेरी (युद्ध के नगाड़े) का शब्द धर्म की भेरी के शब्द में बदल गया है। देव-विमान, हाथी, (नरक-सूचक) अग्नि की ज्वाला और अन्य दिव्य दृश्यों के प्रदर्शनों द्वारा जैसा पहले कई सौ वर्षों से नहीं हुआ था वैसा आज देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा के धर्मानुशासन से प्राणियों की अहिंसा, जीवों की रक्षा, बन्धुओं का आदर, ब्राह्मणों और श्रमणों का सत्कार, माता-पिता की सेवा तथा बूढ़ों की सेवा बढ़ गयी है। यह तथा अन्य बहुत प्रकार का धर्माचरण बढ़ा है। इस धर्माचरण को देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा और भी बढ़ायेंगे। देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा के पुत्र, नाती (पोते), परनाती (परपोते) इस धर्माचरण को कल्प के अन्त तक बढ़ाते रहेंगे और धर्म तथा शील का पालन करते हुए धर्म के अनुशासन का प्रचार करेंगे। क्योंकि धर्म का अनुशासन ही श्रेष्ठ कार्य है। जो शीलवान् नहीं है वह धर्म का आचरण भी नहीं कर सकता। इसलिए इस (धर्माचरण) की वृद्धि करना तथा इसकी हानि न होने देना अच्छा है। (लोग) इस बात की वृद्धि में लगें और इसकी हानि न होने दें इसी उद्देश्य से यह लिखा गया है। राज्याभिषेक के बारह वर्ष बाद देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने यह लिखवाया।

गिरनार का पंचम शिलालेख

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहते है :—अच्छा काम करना कठिन है। जो अच्छा काम करने में लग जाता है वह कठिन काम करता है। पर मैंने बहुत से अच्छे काम किये हैं। इसलिए यदि मेरे पुत्र, नाती, पोते और उनके बाद जो सन्तानें होंगी वे सब कल्प के अन्त तक वैसा अनुसरण करेंगे तो पुण्य करेंगे। किन्तु जो इस कर्त्तव्य का थोड़ा सा भी त्याग करेगा वह पाप करेगा। क्योंकि पाप

करना आसान है। पूर्व काल में धर्म-महामात्र नामक राजकर्मचारी नहीं होते थे। पर मैंने अपने राज्याभिषेक के तेरह वर्ष बाद धर्म-महामात्र नियुक्त किये। ये धर्म-महामात्र सब संप्रदायों के बीच धर्म में रत लोगों के तथा यवन, काम्बोज, हित और सुख के लिए गान्धार, राष्ट्रिक, पीतिनिक और पश्चिमी सीमा पर (रहने वाली जातियों) में धर्म की स्थापना, धर्म की वृद्धि तथा लोगों के हित और सुख के लिए नियुक्त हैं। वे स्वामी और सेवकों के बीच····उनके हित और सुख के लिए तथा जो धर्माचरण में लगे हुए हैं, उनके हित और सुख के लिए तथा (सांसारिक) लोभ और लालसा से उनको मुक्त करने के लिए नियुक्त हैं। वे अन्यायपूर्ण वध और बन्धन को रोकने के लिए·············तथा (उन लोगों का ध्यान रखने के लिए) नियुक्त हैं जो बड़े परिवार वाले हैं या भूत प्रेत आदि की बाधा से पीड़ित हैं[1] या बहुत बुड्ढे हैं। वे पाटलिपुत्र में और बाहर······················हमारे रिश्तेदारों (के अन्तःपुरों में) नियुक्त हैं। ये धर्म-महामात्र (यह देखने के लिए) नियुक्त हैं·········कि धर्म का आचरण·········। इस उद्देश्य से यह धर्मलेख लिखा गया·················

गिरनार का षष्ठ शिलालेख

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहते हैं :—अतीत काल में पहले बराबर हर समय राज्य का काम नहीं होता था और न हर समय प्रतिवेदकों (गुप्तचरों) से समाचार ही सुना जाता था। इसलिए मैंने यह (प्रबन्ध) किया है कि हर समय चाहे मैं खाता होऊँ या अन्तःपुर में रहूँ या गर्भागार (शयनगृह) में होऊँ या टहलता होऊँ या सवारी पर होऊँ या कूच कर रहा होऊँ, सब जगह सब समय, प्रतिवेदक (गुप्तचर) प्रजा का हाल मुझे सुनावें। मैं प्रजा का काम सब जगह करता हूँ। यदि मैं स्वयं अपने मुंह से आज्ञा दूं कि (अमुक) दान दिया जाय या (अमुक) काम किया जाय या महामात्रों को कोई आवश्यक आज्ञा दी जाय और यदि उस विषय

१. "या भूत प्रेत आदि की बाधा से पीड़ित हैं" इसके स्थान पर कुछ लोगों ने यह अर्थ किया है—"या जिन्होंने किसी के उकसाने पर अपराध किया है।"

में कोई विवाद (मतभेद) उनमें उपस्थित हो या (मंत्रि-परिषद्) उसे अस्वीकार करे तो मैंने आज्ञा दी है कि तुरन्त ही हर घड़ी और हर जगह मुझे सूचना दी जाय। क्योंकि मैं कितना ही परिश्रम करूँ और कितना ही राजकार्य करूँ मुझे संतोष नहीं होता। सब लोगों का हित करना मैं अपना प्रधान कर्त्तव्य समझता हूँ। पर सब लोगों का हित, परिश्रम और राज-कार्य-सम्पादन के बिना नहीं हो सकता। सब लोगों का हित करने से बढ़कर और कोई कार्य नहीं है। जो कुछ पराक्रम मैं करता हूँ वह इसलिए कि प्राणियों के प्रति जो मेरा ऋण है उससे उऋण हो जाऊं और इस लोक में लोगों को सुखी करूँ तथा परलोक में उन्हें स्वर्ग का लाभ कराऊँ। यह धर्मलेख इसलिए लिखाया गया कि यह चिरस्थित रहे और मेरे पुत्र, पोते तथा परपोते सब लोगों के हित के लिए पराक्रम करें। पर बहुत अधिक पराक्रम के बिना यह कार्य कठिन है।

गिरनार का सप्तम शिलालेख

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा चाहते हैं कि सब जगह सब संप्रदाय के लोग (एक साथ) निवास करें। क्योंकि सब संप्रदाय संयम और चित्त की शुद्धि चाहते हैं। परन्तु भिन्न भिन्न मनुष्यों की प्रवृत्ति तथा रुचि भिन्न भिन्न—अच्छी या बुरी, ऊंची या नीची—होती है। वे या तो संपूर्ण रूप से या केवल एक अंश में (अपने धर्म का पालन) करेंगे। किन्तु जो बहुत अधिक दान नहीं कर सकता उसमें (कम से कम) संयम, चित्तशुद्धि, कृतज्ञता और दृढ़ भक्ति का होना नितान्त आवश्यक है[१]।

---

१. कोई कोई इस अन्तिम वाक्य का अर्थ इस प्रकार करते हैं:—"किन्तु जो बहुत दान करता है, पर जिसमें संयम, चित्तशुद्धि, कृतज्ञता और दृढ़ भक्ति नहीं है, वह अत्यन्त नीच या निकम्मा है।"

गिरनार का अष्टम शिलालेख

अतीत काल में राजा लोग विहार-यात्रा के लिए निकलते थे। इन यात्राओं में मृगया (शिकार) और इसी तरह के दूसरे आमोद-प्रमोद होते थे। परन्तु देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने राज्याभिषेक के दस वर्ष बाद, जबसे संबोधि (अर्थात् ज्ञानप्राप्ति के मार्ग) का अनुसरण किया, (तब से) इन धर्मयात्राओं (का प्रारम्भ हुआ)। इन धर्मयात्राओं में यह होता है–ब्राह्मणों और श्रमणों का दर्शन करना और उन्हें दान देना, वृद्धों का दर्शन करना और उन्हें सुवर्ण दान देना, ग्रामवासियों के पास जाकर धर्म का उपदेश देना और धर्म-संबंधी चर्चा करना। उस समय से अन्य (आमोद प्रमोद के) स्थान पर इसी धर्मयात्रा में देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा बारम्बार आनन्द लेते हैं।

गिरनार का नवम शिलालेख

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहते हैं:—लोग विपत्ति में, पुत्र तथा कन्या के विवाह में, पुत्र के जन्म में, परदेश जाने के समय और इसी तरह के दूसरे (अवसरों पर) अनेक प्रकार के बहुत से ऊंचे और नीचे मंगलाचार करते हैं। ऐसे अवसरों पर स्त्रियां अनेक प्रकार के तुच्छ और निरर्थक मंगलाचार करती हैं। मंगलाचार करना ही चाहिए। किन्तु इस प्रकार के मंगलाचार अल्पफल देने वाले होते हैं। परन्तु धर्म का जो मंगलाचार है वह महाफल देने वाला है। इस धर्म के मंगलाचार में दास और सेवकों के प्रति उचित व्यवहार, गुरुओं का आदर, प्राणियों की अहिंसा और ब्राह्मणों तथा श्रमणों को दान तथा इसी प्रकार के दूसरे मंगल-कार्य होते हैं। इसलिए पिता या पुत्र या भाई या स्वामी को कहना चाहिए–"यह मंगलाचार अच्छा है, इसे तब तक करना चाहिए जब तक कि अभीष्ट कार्य सिद्ध न हो जाय।" यह भी कहा गया है कि दान देना अच्छा है। किन्तु कोई दान या उपकार ऐसा नहीं है जैसा कि धर्म का दान या धर्म का उपकार है। इसलिए मित्र, सुहृद्, बन्धु, कुटुम्बी और सहायक को अमुक अमुक अवसर पर अपने मित्र बन्धु

आदि से कहना चाहिए :—"अमुक कार्य अच्छा है, अमुक कार्य करना चाहिए, अमुक कार्य करने से स्वर्ग की प्राप्ति हो सकती है।" और स्वर्ग की प्राप्ति से बढ़कर इष्ट वस्तु क्या है ?

गिरनार का दशम शिलालेख

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा, यश या कीर्ति को बड़ी भारी वस्तु नहीं समझते। (जो कुछ भी यश या कीर्ति वह चाहते हैं) सो इसलिए कि वर्तमान में और भविष्य में मेरी प्रजा धर्म की सेवा करने और धर्म के व्रत को पालन करने में उत्साहित हो। बस केवल इसीलिए देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा यश और कीर्ति चाहते हैं। देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा जो भी पराक्रम करते हैं वह सब परलोक के लिए करते हैं, जिसमें कि सब लोग दोष से रहित हो जायं। जो अपुण्य है, वही दोष है। सब कुछ त्याग करके बड़ा पराक्रम किये बिना कोई भी मनष्य चाहे वह छोटा हो या बड़ा, इस (पुण्य) कार्य को नहीं कर सकता। बड़े आदमी के लिए तो यह और भी कठिन है।

गिरनार का ग्यारहवां शिलालेख

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहते हैं :— कोई ऐसा दान नहीं जैसा कि धर्म का दान है, (कोई ऐमी मित्रता नहीं जैसी कि) धर्म के द्वारा मित्रता है, (कोई ऐसा बंटवारा नहीं जैसा कि) धर्म का बंटवारा है, (कोई ऐसा संबन्ध नहीं जैसा कि) धर्म का संबन्ध है। धर्म में यह होता है कि दास और सेवक के साथ उचित व्यवहार किया जाय, माता पिता की सेवा की जाय, मित्र, परिचित, जातिवालों तथा ब्राह्मणों और श्रमणों को दान दिया जाय और प्राणियों की हिंसा न की जाय। इसके लिए पिता, पुत्र, भाई, मित्र, परिचित, जातभाई और पड़ोसी

को भी यह कहना चाहिए :—"यह अच्छा कार्य है, इसे करना चाहिए।" जो ऐसा करता है वह इस लोक को सिद्ध करता है और परलोक में भी उस धर्मदान से अनन्त पुण्य का भागी होता है।

गिरनार का बारहवां शिलालेख

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा विविध दान और पूजा से गृहस्थ और संन्यासी सब संप्रदायवालों का सत्कार करते हैं, किन्तु देवताओं के प्रिय दान या पूजा की इतनी परवाह नहीं करते जितनी इस बात की कि सब संप्रदायों के सार (तत्त्व) की वृद्धि हो। (संप्रदायों के) सार की वृद्धि कई प्रकार से होती है, पर उसकी जड़ वाक्-संयम है अर्थात् लोग केवल अपने ही संप्रदाय का आदर और बिना अवसर दूसरे संप्रदायों की निन्दा न करें या विशेष अवसर पर निन्दा भी हो तो संयम के साथ। हर दशा में दूसरे संप्रदायों का आदर करना ही चाहिए। ऐसा करने से मनुष्य अपने संप्रदाय की उन्नति और दूसरे संप्रदायों का उपकार करता है। इसके विपरीत जो करता है वह अपने संप्रदाय की (जड़) काटता है और दूसरे संप्रदायों का भी अपकार करता है। क्योंकि जो कोई अपने संप्रदाय की भक्ति में आकर इस विचार से कि मेरे संप्रदाय का गौरव बढ़े, अपने संप्रदाय की प्रशंसा करता है और दूसरे संप्रदायों की निन्दा करता है, वह ऐसा करके वास्तव में अपने संप्रदाय को ही गहरी हानि पहुँचाता है। इसलिए समवाय (परस्पर मेलजोल से रहना) ही अच्छा है अर्थात् लोग एक दूसरे के धर्म को ध्यान देकर सुनें और उसकी सेवा करें। क्योंकि देवताओं के प्रिय (राजा) की यह इच्छा है कि सब संप्रदाय वाले बहुश्रुत (भिन्न भिन्न संप्रदायों के सिद्धांतों से परिचित) तथा कल्याणकारक ज्ञान से युक्त हों। इसलिए जो लोग अपने अपने संप्रदाय में ही अनुरक्त हैं उनसे कहना चाहिए कि देवताओं के प्रिय दान या पूजा को इतना बड़ा नहीं समझते जितना इस बात को कि सब संप्रदायों के सार (तत्त्व) की वृद्धि हो। इस कार्य के निमित्त बहुत से धर्म-महामात्र, स्त्री-महामात्र, व्रजभूमिक तथा अन्य इसी प्रकार के राज-कर्मचारी नियुक्त हैं। इसका फल यह है कि अपने संप्रदाय की उन्नति होती है और धर्म का गौरव बढ़ता है।

गिरनार का तेरहवां शिलालेख

··········कलिंग················एक लाख मनुष्य मारे गये और इससे कई गुना आदमी (महामारी आदि में) मरे। उसके बाद अब जबकि कलिंग देश मिल गया है धर्म का तीव्र अध्ययन······ ·········देवताओं के प्रिय को (पश्चात्ताप) ······लोगों की हत्या, मृत्यु और देश-निष्कासन होता है। देवताओं के प्रिय को इससे बहुत दुःख और खेद हुआ।··········ब्राह्मण, श्रमण तथा अन्य·············माता पिता की सेवा, गुरुओं की सेवा, मित्र, परिचित, सहायक, जाति, दास············प्रियजनों से वियोग·······
जिनके सहायक और संबंधी विपत्ति में पड़ जाते हैं उन्हें भी इस कारण पीड़ा होती है। यह विपत्ति सबके हिस्से में पड़ती है।···········यवनों के सिवा····
जो वर्ग··········जहाँ मनुष्य एक न एक संप्रदाय को न मानते हों······
उस समय जितने आदमी······हज़ारवें हिस्से का नाश भी देवताओं के प्रिय को दुःख का कारण होगा।··········क्षमा के योग्य·····देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी के राज्य में जितने वनवासी लोग है·········उनसे कहते हैं·····
सब प्राणियों की अहिंसा, संयम, सबों के साथ समान व्यवहार तथा नम्रता।
·············देवताओं के प्रिय ने ···········प्राप्त की हैं। जहाँ····
···· यवन राजा (अन्तियोक) और उस अन्तियोक के परे चार राजा अर्थात् तुरमाय, अन्तेकिनि, मगा,········यहाँ राजा के राज्य में·······यवनों में, काम्बोजों में.........आन्ध्रों में, पुलिन्दों में, सब जगह लोग देवताओं के प्रिय के धर्मानुशासन का अनुसरण करते हैं। जहाँ दूत·····धर्मानुशासन (सुनकर) धर्म का आचरण करते है।······वह विजय सर्वत्र आनन्द की देनेवाली है। यह आनन्द धर्म की विजय से प्राप्त हुआ है।············
देवताओं के प्रिय। इस अभिप्राय से यह धर्मलेख·············नया देश विजय करना अपना कर्त्तव्य न समझें। यदि कभी वे (नया देश) विजय करना चाहें तो क्षमा को········ यह लोक और परलोक दोनों जगह············यह लोक और परलोक··············

गिरनार का चौदहवां शिलालेख

ये धर्मलेख देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने लिखवाये हैं। (ये लेख) कहीं संक्षेप में, कहीं मध्यम रूप में और कहीं विस्तृत रूप में है। क्योंकि सब जगह के लिए सब बात लागू नहीं होती[1]। मेरा राज्य बहुत विस्तृत है, इसलिए बहुत से (लेख) लिखवाये गये हैं और बहुत से लगातार लिखवाये जाएंगे। कहीं कहीं विषय की रोचकता के कारण एक ही बात बार बार कही गयी है, जिससे कि लोग उसके अनुसार आचरण करें। इन लेखों में जो कुछ अपूर्ण लिखा गया हो उसका कारण देश-भेद, संक्षिप्त लेख या लिखने वाले का अपराध समझना चाहिए।

गिरनार के तेरहवें शिलालेख के नीचे खुदे हुए हाथी के चित्र के नीचे खुदा हुआ लेख

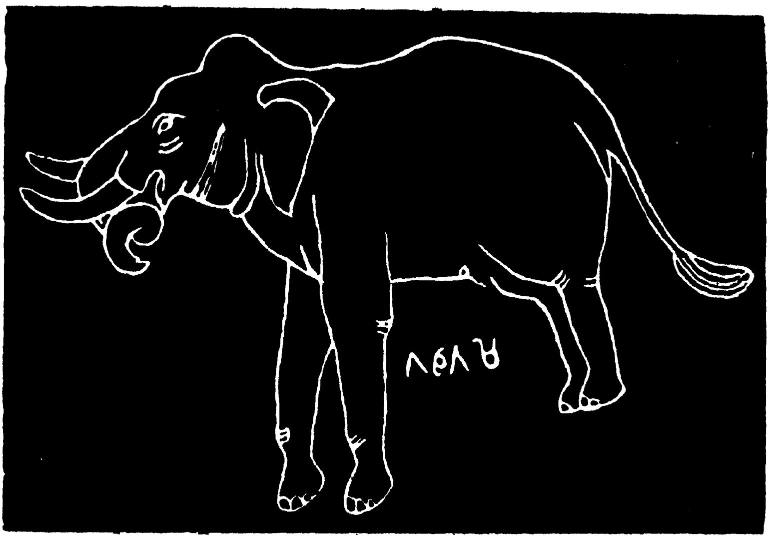
·······सर्वश्वेत हाथी सब लोक को सुख देने वाला।

कालसी में चट्टान पर खुदा हुआ प्रथम शिलालेख

यह धर्मलेख देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने लिखवाया है। यहाँ (मेरे राज्य में) कोई जीव मार कर होम न किया जाय और समाज (मेला, उत्सव या गोष्ठी जिसमें हिंसा आदि होती हो) न किया जाय। क्योंकि देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा (ऐसे) समाज में बहुत से दोष देखते हैं। परन्तु एक प्रकार के ऐसे समाज (मेले-उत्सव) हैं जिन्हें देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा अच्छा समझते

---

१. कोई कोई इस वाक्य का अर्थ इस प्रकार करते है—"सब जगह सब बातें या सब लेख नहीं लिखे गये हैं।"



कालसी की चट्टान पर खुदी हुई हाथी की आकृति जिसके नीचे ब्राह्मी अक्षरों में "गजतम"
(संस्कृत 'गजोत्तमः') अर्थात् श्रेष्ठ हाथी यह चार अक्षरों का लेख खुदा हुआ है।
हाथी बुद्ध के लिए संकेत-सूचक है।



यह अशोक स्तम्भ पहले टोपरा में स्थित था। वहाँ से सुल्तान फीरूज़ शाह (१३५१-८८ ई०) के द्वारा दिल्ली लाया गया और दिल्ली गेट या दिल्ली दरवाज़ा के बाहर फीरूज़ शाह के तिमंज़ले कोटले में खड़ा किया गया। वहीं आजकल यह स्थित है।

हैं। पहले देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा की पाकशाला में प्रतिदिन कई हजार जीव सूप (शोरवा) बनाने के लिए मारे जाते थे। पर अब से जब कि यह धर्मलेख लिखा जा रहा है, केवल तीन ही जीव (प्रतिदिन) मारे जाते हैं, दो मोर और एक मृग। पर मृग का मारा जाना नियत नहीं है। (भविष्य में) यह तीनों प्राणी भी नहीं मारे जाएंगे।

कालसी का द्वितीय शिलालेख

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा के जीते हुए प्रदेश में सब जगह तथा जो सीमावर्ती राज्य है जैसे चोड़, पांड्य, सत्यपुत्र, केरलपुत्र, ताम्रपर्णी, वहाँ तथा अन्तियोक नामक यवन राज और जो उस अन्तियोक के समीप सामन्त राजा हैं, उन सबके देशों में देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने दो प्रकार की चिकित्सा का प्रबन्ध किया है—एक मनुष्यों की चिकित्सा के लिए और दूसरा पशुओं की चिकित्सा के लिए। औषधियाँ भी मनुष्यों और पशुओं के लिए जहाँ-जहाँ नहीं थीं, वहाँ वहाँ लायी और रोपी गयी हैं। इसी तरह मूल और फल भी जहाँ जहाँ नहीं थे वहाँ वहाँ सब जगह लाये और रोपे गये हैं। मार्गों में पशुओं और मनुष्यों के आराम के लिये वृक्ष लगाये गये और कुँएँ खुदवाये गये हैं।

कालसी का तृतीय शिलालेख

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहते हैं :—राज्याभिषेक के बारह बाद मैंने यह आज्ञा दी है कि मेरे राज्य में सब जगह युक्त, रज्जुक और प्रादेशिक नामक राजकर्मचारी पांच-पांच वर्ष पर इसी काम के लिए अर्थात् धर्म की शिक्षा देने के लिए तथा और और कामों के लिए (यह प्रचार करते हुए) दौरा करें कि "माता पिता की सेवा करना अच्छा है; मित्र, परिचित, स्वजातिबान्धव तथा

ब्राह्मण और श्रमण को दान देना अच्छा है; जीवहिंसा न करना अच्छा है; थोड़ा व्यय और थोड़ा संचय करना अच्छा है ।" (अमात्यों की) परिषद् भी युक्त नामक कर्मचारियों को आज्ञा देगी कि वे इन नियमों के वास्तविक भाव और अक्षर के अनुसार इनका पालन करें ।

कालसी का चतुर्थ शिलालेख

अतीत काल में— कई सौ वर्षों से—प्राणियों का वध, जीवों की हिंसा, बन्धुओं का अनादर तथा श्रमणों और ब्राह्मणों का अनादर बढ़ता ही गया । पर आज देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा के धर्माचरण से भेरी (युद्ध के नगाड़े) का शब्द धर्म की भेरी के शब्द में बदल गया है । देव-विमान, हाथी, (नरक सूचक) अग्नि की ज्वाला और अन्य दिव्य दृश्यों के प्रदर्शनों द्वारा जैसा पहले कई सौ वर्षों से नहीं हुआ था वैसा आज देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा के धर्मानुशासन से प्राणियों की अहिंसा, जीवों की रक्षा, बन्धुओं का आदर, ब्राह्मणों और श्रमणों का आदर, माता पिता की सेवा तथा बूढ़ों की सेवा बढ़ गयी है । यह तथा अन्य प्रकार का धर्माचरण बढ़ा है । इस धर्माचरण को देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा और भी बढ़ायेंगे । देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा के पुत्र, नाती (पोते), परनाती (परपोते) इस धर्माचरण को कल्प के अन्त तक बढ़ाते रहेंगे और धर्म तथा शील का पालन करते हुए धर्म के अनुशासन का प्रचार करेंगे । क्योंकि धर्म का अनुशासन श्रेष्ठ कार्य है । जो शीलवान् नहीं है वह धर्म का आचरण भी नहीं कर सकता । इसलिए इस (धर्माचरण) की वृद्धि करना तथा इसकी हानि न होने देना अच्छा है । लोग इस बात की वृद्धि में लगें और इसकी हानि न होने दें इसी उद्देश्य से यह लिखा गया है । राज्याभिषेक के बारह वर्ष बाद देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने यह लिखवाया ।

कालसी का पंचम शिलालेख

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा कहते हैं :—अच्छा काम करना कठिन है। जो अच्छा काम करने में लग जाता है वह कठिन काम करता है। पर मैंने बहुत से अच्छे काम किये हैं। इसलिए यदि मेरे पुत्र, नाती पोते और उनके बाद जो सन्तान होंगी वे सब कल्प (के अन्त) तक वैसा अनुसरण करेंगे तो पुण्य करेंगे, किन्तु जो इस (कर्त्तव्य) का थोड़ा सा भी त्याग करेगा वह पाप करेगा। क्योंकि पाप तेजी से आगे बढ़ता है। पूर्व काल में धर्म-महामात्र नाम के राज-कर्मचारी नहीं होते थे। (पर) मैंने अपने राज्याभिषेक के तेरह वर्ष बाद धर्म-महामात्र नियुक्त किये। ये धर्म-महामात्र सब संप्रदायों के बीच धर्म में रत लोगों तथा यवन, काम्बोज, गान्धार और पश्चिमी सीमा (पर रहने वाली जातियों) के बीच धर्म की स्थापना, धर्म की वृद्धि तथा उनके हित और सुख के लिए नियुक्त हैं। वे स्वामी और सेवकों, ब्राह्मणों और धनवानों, अनाथों और वृद्धों के बीच धर्म में अनुरक्त जनों के हित और सुख के लिए तथा (सांसारिक) लोभ और लालसा की बेड़ी से उनको मुक्त करने के लिए नियुक्त हैं, वे (अन्यायपूर्ण) वध और बन्धन को रोकने के लिए, बेड़ी से जकड़े हुओं को छुड़ाने के लिए और जो भूत प्रेत आदि की बाधाओं से पीड़ित हैं उनकी रक्षा के लिए तथा (उन लोगों का ध्यान रखने के लिए) नियुक्त हैं जो बड़े परिवार वाले हैं या बहुत बुड्ढे हैं। वे पाटलिपुत्र में और बाहर के नगरों में सब जगह हमारे भाइयों, बहिनों तथा दूसरे रिश्तेदारों के अन्तःपुरों में नियुक्त हैं। ये धर्म-महामात्र मेरे जीते हुए प्रदेशों में सब जगह धर्मानुरागी लोगों के बीच (यह देखने के लिए) नियुक्त हैं कि वे धर्म का आचरण किस प्रकार करते हैं और दान देने में कितना प्रेम रखते हैं। यह धर्मलेख इस उद्देश्य से लिखा गया कि यह बहुत दिनों तक स्थिर रहे और मेरी प्रजा इसके अनुसार आचरण करे।

कालसी का षष्ठ शिलालेख

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहते हैं :—अतीत काल में पहले बराबर हर समय राज्य का काम नहीं होता था और न हर समय प्रतिवेदकों (गुप्तचरों) से समाचार ही सुना जाता था । इसलिए मैंने यह (प्रबन्ध) किया है कि हर समय, चाहे मैं खाता होऊँ या अन्तःपुर में होऊँ या गर्भागार (शयनगृह) में होऊँ या टहलता होऊँ या सवारी पर होऊँ या कूच कर रहा होऊँ, सब जगह सब समय प्रतिवेदक (गुप्तचर लोग) प्रजा का हाल मुझे सुनावें । मैं प्रजा का काम सब जगह करूँगा । यदि मैं स्वयं अपने मुख से आज्ञा दूं कि (अमुक) दान दिया जाय या (अमुक) काम किया जाय या महामात्रों को कोई आवश्यक भार सौंपा जाय और यदि उस विषय में कोई विवाद (मतभेद) उनमें उपस्थित हो या (मंत्रि-परिषद्) उसे अस्वीकार करे तो मैंने आज्ञा दी है कि तुरन्त ही हर घड़ी और हर जगह मुझे सूचना दी जाय । क्योंकि मैं कितना ही परिश्रम करूँ और कितना ही राजकार्य करूँ मुझे संतोष नहीं होता । क्योंकि सब लोगों का हित करना मैं अपना कर्त्तव्य समझता हूँ । पर सब लोगों का हित परिश्रम और राजकार्य-सम्पादन के बिना नहीं हो सकता । सब लोगों का हित करने से बढ़कर कोई बड़ा कार्य नहीं है । जो कुछ पराक्रम मैं करता हूँ वह इसलिए कि प्राणियों के प्रति जो मेरा ऋण है उससे उऋण हो जाऊँ और इस लोक में लोगों को सुखी करूँ तथा परलोक में उन्हें स्वर्ग का लाभ कराऊँ । यह धर्मलेख इसलिए लिखाया गया कि यह चिरस्थित रहे और मेरे पुत्र और पत्नियाँ सब लोगों के हित के लिए पराक्रम करें । पर बहुत अधिक पराक्रम के बिना यह कार्य कठिन है ।

कालसी का सप्तम शिलालेख

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा चाहते हैं कि सब जगह सब संप्रदाय के लोग (एक साथ) निवास करें । क्योंकि सब संप्रदाय संयम और चित्त की शुद्धि चाहते हैं । परन्तु भिन्न भिन्न मनुष्यों की प्रवृत्ति तथा रुचि भिन्न भिन्न—ऊंची या नीची,

अच्छी या बुरी होती है। वे या तो संपूर्ण रूप से या केवल आंशिक रूप से (अपने धर्म का पालन) करेंगे। किन्तु जो बहुत अधिक दान नहीं कर सकता उसमें संयम, चित्तशुद्धि, कृतज्ञता और दृढ़ भक्ति का होना नितान्त आवश्यक है।[1]

कालसी का अष्टम शिलालेख

अतीत काल में राजा लोग विहार यात्रा के लिए निकलते थे। इन यात्राओं में मृगया (शिकार) और इसी तरह के दूसरे आमोद प्रमोद होते थे। परन्तु देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने राज्याभिषेक के दस वर्ष बाद जब से संबोधि (अर्थात् ज्ञान प्राप्ति के मार्ग) का अनुसरण किया (तब से) धर्मयात्राओं (का प्रारंभ हुआ)। इन धर्मयात्राओं में यह होता है :–ब्राह्मणों और श्रमणों का दर्शन करना और उन्हें दान देना, वृद्धों का दर्शन करना और उन्हें स्वर्ण दान देना, ग्राम-वासियों के पास जाकर धर्म का उपदेश देना और धर्म-संबन्धी चर्चा करना। उस समय से अन्य (आमोद प्रमोद) के स्थान पर इसी धर्मयात्रा में देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा बारंबार आनन्द लेते हैं।

कालसी का नवम शिलालेख

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा (ऐसा) कहते हैं :–लोग विपत्ति में, पुत्र तथा कन्या के विवाह में, पुत्र के जन्म में, परदेश जाने के समय और इसी तरह के दूसरे (अवसरों पर) अनेक प्रकार के बहुत से मंगलाचार करते हैं। ऐसे अवसरों

१. कोई कोई इस अन्तिम वाक्य का अर्थ इस प्रकार करते हैं—"किन्तु जो बहुत दान करता है, पर उसमें संयम, चित्त-शुद्धि, कृतज्ञता और दृढ़ भक्ति नहीं है, वह अत्यन्त नीच या निकम्मा है।"

पर स्त्रियां अनेक प्रकार के तुच्छ और निरर्थक मंगलाचार करती हैं। मंगलाचार करना ही चाहिए। किन्तु इस प्रकार के मंगलाचार अल्पफल देने वाले होते हैं। परन्तु धर्म का जो मंगलाचार है वह महाफल देने वाला है। इस धर्म के मंगलाचार में दास और सेवकों के प्रति उचित व्यवहार, गुरुओं का आदर, प्राणियों की अहिंसा, ब्राह्मणों तथा श्रमणों को दान और इसी प्रकार के दूसरे (सत्कार्य) करने पड़ते हैं। इसलिए पिता, पुत्र, भाई, स्वामी, मित्र, परिचित, पड़ोसी को भी कहना चाहिए :—"यह मंगलाचार अच्छा है, इसे तब तक करना चाहिए जब तक कि अभीष्ट कार्य की सिद्धि न हो। मैं इसे (फिर) करूंगा।" दूसरे मंगलाचार अनिश्चित फल वाले हैं। उनसे उद्देश्यकी सिद्धि हो या न हो। वे इस लोक में ही फल देने वाले हैं। पर धर्म का मंगलाचार सब काल के लिए है। इस धर्म के मंगलाचार से इस लोक में अभीष्ट उद्देश्य की प्राप्ति न भी हो, तब भी अनन्त पुण्य परलोक में प्राप्त हो सकता है। परन्तु यदि इस लोक में अभीष्ट उद्देश्य की प्राप्ति हो जाय तो धर्म के मंगलाचार से दो लाभ होते हैं अर्थात् इस लोक में अभीष्ट उद्देश्य की सिद्धि तथा परलोक में अनन्त पुण्य की प्राप्ति।

कालसी का दशम शिलालेख

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा यश या कीर्ति को बड़ी भारी वस्तु नहीं समझते। जो कुछ भी यश या कीर्ति वह चाहते हैं सो इसलिए कि वर्तमान में और भविष्य में (मेरी) प्रजा धर्म की सेवा करने और धर्म के व्रत को पालन करने में उत्साहित हो। बस केवल इसीलिए देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा यश और कीर्ति चाहते हैं। देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा जो भी पराक्रम करते हैं सो परलोक के लिए ही करते हैं, जिससे कि सब लोग दोष से रहित हो जांय। जो अपुण्य है वही दोष है। सब कुछ त्याग करके बड़ा पराक्रम किये बिना, कोई भी मनुष्य चाहे वह छोटा हो या बड़ा, इस (पुण्य) कार्य को नहीं कर सकता। बड़े आदमी के लिए तो यह और भी कठिन है।

कालसी का ग्यारहवां शिलालेख

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहते हैं:—कोई ऐसा दान नहीं जैसा कि धर्म का दान है, (कोई ऐसा बंटवारा नहीं जैसा कि) धर्म का बंटवारा है, (कोई ऐसा संबन्ध नहीं जैसा कि) धर्म का संबन्ध है। धर्म में यह होता है कि दास और सेवक के साथ उचित व्यवहार किया जाय, माता पिता की सेवा की जाय, मित्र, परिचित, जातिबन्धु, श्रमणों और ब्राह्मणों को दान दिया जाय तथा प्राणियों की हिंसा न की जाय। इसके लिए पिता, पुत्र, भाई, स्वामी, मित्र, परिचित तथा पड़ोसी को भी यह कहना चाहिए :—"यह अच्छा कार्य है, इसे करना चाहिए।" जो ऐसा करता है, वह इस लोक को सिद्ध करता है और परलोक में भी उस धर्मदान से अनन्त पुण्य का भागी होता है।

कालसी का बारहवां शिलालेख

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा विविध दान और पूजा से गृहस्थ और संन्यासी सब सम्प्रदाय वालों का सत्कार करते हैं। किन्तु देवताओं के प्रिय दान या पूजा की इतनी परवाह नहीं करते जितनी इस बात की कि सब सम्प्रदायों के सार (तत्त्व) की वृद्धि हो। (संप्रदायों के) सार की वृद्धि कई प्रकार से होती है, पर उसकी जड़ वाक्-संयम है अर्थात् लोग केवल अपने संप्रदाय का आदर और बिना अवसर दूसरे सम्प्रदायों की निन्दा न करें। या विशेष अवसर पर निन्दा भी हो तो संयम के साथ। हर दशा में दूसरे संप्रदायों का आदर करना ही चाहिए। ऐसा करने से मनुष्य अपने सम्प्रदाय की अधिक उन्नति और दूसरे संप्रदायों का उपकार करता है। इसके विपरीत जो करता है वह अपने संप्रदाय की (जड़) काटता है और दूसरे संप्रदायों का भी अपकार करता है। क्योंकि जो कोई अपने संप्रदाय की भक्ति में आकर इस विचार से कि मेरे संप्रदाय का गौरव बढ़े, अपने संप्रदाय की प्रशंसा करता है और दूसरे संप्रदायों की निन्दा करता है, वह वास्तव में अपने संप्रदाय को ही गहरी हानि पहुँचाता है। इसलिये समवाय (परस्पर मेल-

जोल से रहना) ही अच्छा है अर्थात् लोग एक दूसरे के धर्म को ध्यान देकर सुनें और उसकी सेवा करें। क्योंकि देवताओं के प्रिय (राजा) की यह इच्छा है कि सब संप्रदाय वाले बहुश्रुत (भिन्न भिन्न संप्रदायों के सिद्धांतों से परिचित) तथा कल्याण-दायक ज्ञान से युक्त हों। इसलिए जो लोग अपने अपने संप्रदायों में ही अनुरक्त हैं उनसे कहना चाहिए कि देवताओं के प्रिय दान या पूजा को इतना बड़ा नहीं समझते जितना इस बात को कि सब संप्रदायों के सार (तत्त्व) की वृद्धि हो। इस कार्य के निमित्त बहुत से धर्म-महामात्र, स्त्री-महामात्र, व्रजभूमिक तथा अन्य इसी प्रकार के राजकर्मचारी नियुक्त हैं। इसका फल यह है कि अपने संप्रदाय की उन्नति होती है और धर्म का गौरव बढ़ता है।

कालसी का तेरहवां शिलालेख

राज्याभिषेक के आठ वर्ष बाद देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने कलिंग देश को विजय किया। वहाँ डेढ़ लाख मनुष्य (बन्दी बनाकर) देश से बाहर ले जाये गये, एक लाख मनुष्य मारे गये और इससे कई गुणा आदमी (महामारी आदि से) मरे। इसके बाद अब जबकि कलिंग-देश मिल गया है, देवताओं के प्रिय द्वारा धर्म का अध्ययन, धर्म का प्रेम और धर्म का अनुशासन तीव्र गति से हुआ है। कलिंग को जीतने पर देवताओं के प्रिय को बड़ा पश्चात्ताप हुआ। क्योंकि जिस देश का पहले विजय नहीं हुआ है उस देश का विजय होने पर लोगों की हत्या, मृत्यु और देश-निष्कासन होता है। देवताओं के प्रिय को इससे बहुत दुःख और खेद हुआ। देवताओं के प्रिय को इस बात से और भी दुःख हुआ कि वहाँ ब्राह्मण और श्रमण तथा अन्य संप्रदाय के लोग और गृहस्थ रहते हैं, जिनमें ब्राह्मणों की सेवा, माता-पिता की सेवा, गुरुओं की सेवा, मित्र, परिचित, सहायक, जाति, दास और सेवकों के प्रति उचित व्यवहार और दृढ़ भक्ति पायी जाती है। ऐसे लोगों का विनाश, वध या प्रियजनों से बलात् वियोग होता है। अथवा जो स्वयं तो सुरक्षित होते हैं, पर जिनके मित्र, परिचित, सहायक और संबंधी विपत्ति में पड़ जाते हैं, उन्हें भी अत्यन्त स्नेह के कारण बड़ी पीड़ा होती है। यह विपत्ति

सब के हिस्से में पड़ती है और इससे देवताओं के प्रिय को विशेष दुःख हुआ। यवनों के देश को छोड़कर कोई ऐसा देश नहीं जहाँ ये संप्रदाय न हों और उनमें ब्राह्मण और श्रमण न हों। कोई ऐसा जनपद नहीं जहाँ मनुष्य एक न एक संप्रदाय को न मानते हों। इसलिए कलिंग देश के विजय में उस समय जितने आदमी मारे गये, मरे या हर लिये गये उनके सौवें या हज़ारवें हिस्से का नाश भी अब देवताओं के प्रिय को बड़े दुःख का कारण होगा। ·····इच्छा करते हैं कि सब प्राणियों के साथ ······संयम, समान व्यवहार और नम्रता·········धर्म विजय को ही देवताओं के प्रिय ··················। यह धर्म-विजय देवताओं के प्रिय ने यहाँ (अपने राज्य में) तथा छः सौ योजन दूर उन सीमावर्ती राज्यों में बार बार प्राप्त की है जहाँ अन्तियोक नामक यवन राजा राज्य करता है और उस अन्तियोक (सीरिया का राजा ऐन्टिओकस) के परे चार राजा अर्थात् तुलमय (मिश्र का राजा टालेमी), अन्तेकिन (मेसिडोनिया का राजा एन्टिगोनस गोनेटस), मका (साइरीनी का राजा मागस), और अलिक्यशुदल (एपिरस का राजा एलेक्जैन्डर) राज्य करते हैं (और) इसी प्रकार अपने राज्य के नीचे (दक्षिण में), चोड़, पांड्य तथा ताम्रपर्णी (लंका) तक (प्राप्त की है)। इसी प्रकार यहाँ (राजा के राज्य में), यवनों में, काम्बोजों में, नाभकों में, नाभपंक्तियों में, भोजों में, पितिनिकों में, आंध्रों में और पुलिन्दों में सब जगह लोग देवताओं के प्रिय के धर्मानुशासन का अनुसरण करते हैं। जहाँ जहाँ देवताओं के प्रिय के दूत नहीं पहुँच सकते वहाँ वहाँ भी लोग देवताओं के प्रिय का धर्माचरण, धर्मविधान और धर्मानुशासन सुनकर, धर्म का आचरण करते हैं और करेंगे। इस प्रकार सर्वत्र जो विजय हुई है वह विजय वास्तव में आनन्द की देने वाली है। धर्म-विजय में जो आनन्द मिलता है वह बहुत गाढ़ा आनन्द है। पर यह आनन्द तुच्छ वस्तु है। देवताओं के प्रिय पारलौकिक कल्याण को ही बड़ी भारी (आनन्द की) वस्तु समझते हैं। इस लिए यहधर्म-लेख लिखा गया कि मेरे पुत्र और पौत्र जो हों वे नया (देश) विजय करना अपना कर्त्तव्य न समझें। यदि कभी वे नया देश विजय करना भी चाहें तो क्षमा और दया से काम लेना चाहिए और धर्म-विजय को ही यथार्थ में विजय मानना चाहिए। इससे यह लोक और परलोक दोनों बनते हैं। उद्यम में ही वे आनन्द प्राप्त करें। क्योंकि उससे यह लोक और परलोक (दोनों सिद्ध होते हैं)।

कालसी का चौदहवां शिलालेख

यह धर्मलेख देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने लिखवाया है। (यह लेख) कहीं संक्षेप में, कहीं मध्यम रूप में और कहीं विस्तृत रूप में है। क्योंकि सब जगह सब लागू नहीं होता।[१] मेरा राज्य बहुत विस्तृत है, इसलिए बहुत से लेख लिखवाये गये हैं और बहुत से लगातार लिखवाये जाएंगे। कहीं कहीं विषय की रोचकता के कारण एक ही बात को बार बार कहा गया है, जिससे कि लोग उसके अनुसार आचरण करें। इस लेख में जो कुछ अपूर्ण लिखा गया हो उसका कारण देश-भेद, संक्षिप्त लेख या लिखने वाले का अपराध समझना चाहिए।

कालसी की चट्टान पर खुदे हुए हाथी के चित्र के नीचे चार अक्षरों वाला लेख

गजतम अर्थात् श्रेष्ठ हाथी

शाहबाजगढ़ी में चट्टान पर खुदा हुआ प्रथम शिलालेख

यह धर्मलेख देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने लिखवाया है। यहाँ (मेरे राज्य में) कोई जीव मार कर होम न किया जाय और समाज (मेला, उत्सव या गोष्ठी जिसमें हिंसा आदि होती हो) न किया जाय। क्योंकि देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा (ऐसे) समाज में बहुत से दोष देखते हैं। परन्तु एक प्रकार के ऐसे समाज (मेले, उत्सव) हैं जिन्हें देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा अच्छा समझते

---

१. कोई कोई इस वाक्य का अर्थ इस प्रकार करते हैं:—"सब जगह सब बातें या सब लेख नहीं लिखे गये हैं।"

हैं। पहले देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा की पाकशाला में प्रतिदिन कई हजार जीव सूप (शोरबा) बनाने के लिए मारे जाते थे। पर अब जब कि यह धर्म लेख लिखा जा रहा है, केवल तीन ही जीव (प्रतिदिन) मारे जाते है, दो मोर और एक मृग। पर मृग का मारा जाना नियत नही है। भविष्य में यह तीनों प्राणी भी नहीं मारे जायेंगे।

शाहबाज़गढ़ी का द्वितीय शिलालेख

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा के जीते हुए प्रदेश में सब जगह तथा जो सीमावर्त्ती राज्य हैं जैसे चोड़, पांड्य, सत्यपुत्र, केरलपुत्र, ताम्रपर्णी, वहाँ तथा अन्तियोक नामक यवन-राज और जो उस अन्तियोक (सीरिया का राजा) के समीप सामन्त राजा हैं उन सबके देशों में देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने दो प्रकार की चिकित्सा का प्रबन्ध किया है—एक मनुष्यों की चिकित्सा के लिए और दूसरा पशुओं की चिकित्सा के लिए। औषधियाँ भी मनुष्यों और पशुओं के लिए जहाँ-जहाँ नहीं थीं, वहाँ-वहाँ लायी और रोपी गयी हैं। इसी तरह मनुष्यों और पशुओं के लाभ के लिए मूल और फल भी जहाँ-जहाँ नहीं थे वहाँ वहाँ, सब जगह लाये और रोपे गये हैं। पशुओं और मनुष्यों के लिए कुँए खुदवाये गये हैं।

शाहबाज़गढ़ी का तृतीय शिलालेख

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहते हैं :—राज्याभिषेक के बारह वर्ष बाद मैंने यह आज्ञा दी है कि मेरे राज्य में सब जगह युक्त, रज्जुक और प्रादेशिक नामक राजकर्मचारी पांच पांच वर्ष पर इसी काम के लिए अर्थात् धर्म की शिक्षा देने के लिए तथा और और कामों के लिए सब जगह यह प्रचार करते हुए दौरा करें कि "माता-पिता की सेवा करना अच्छा है; मित्र, परिचित, स्वजाति-

बान्धव तथा ब्राह्मण और श्रमण को दान देना अच्छा है; जीव हिंसा न करना अच्छा है; थोड़ा व्यय और थोड़ा संचय करना अच्छा है।" (अमात्यों की) परिषद् भी युक्त नामक कर्मचारियों को आज्ञा देगी कि वे इन नियमों के वास्तविक भाव और अक्षर के अनुसार इनका पालन करें।

शाहबाजगढ़ी का चतुर्थ शिलालेख

अतीत काल में—कई सौ वर्षों से—प्राणियों का वध, जीवों की हिंसा, बन्धुओं का अनादर तथा श्रमणों और ब्राह्मणों का अनादर बढ़ता ही गया। पर आज देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा के धर्माचरण से भेरी (युद्ध के नगाड़े) का शब्द धर्म की भेरी के शब्द में बदल गया है। देव-विमान, हाथी, (नरक-सूचक) अग्नि की ज्वाला और अन्य दिव्य दृश्यों के प्रदर्शनों द्वारा जैसा पहले कई सौ वर्षों मे नहीं हुआ था वैसा आज देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा के धर्मानुशासन से प्राणियों की अहिंसा, जीवों की रक्षा, बन्धुओं का आदर, ब्राह्मणों और श्रमणों का आदर, माता पिता की सेवा तथा बूढ़ों की सेवा बढ़ गयी है। यह तथा अन्य प्रकार का धर्माचरण बढ़ा है। इस धर्माचरण को देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा और भी बढ़ायेंगे। देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा के पुत्र, नाती (पोते), परनाती (परपोते) इस धर्माचरण को कल्प के अन्त तक बढ़ाते रहेंगे और धर्म तथा शील का पालन करते हुए धर्म के अनशासन का प्रचार करेंगे। क्योंकि धर्म का अनुशासन श्रेष्ठ कार्य है। जो शीलवान् नहीं है वह धर्म का आचरण भी नहीं कर सकता। इसलिए इस (धर्माचरण) की वृद्धि करना तथा इसकी हानि न होने देना अच्छा है। लोग इस बात की वृद्धि में लगें और इसकी हानि न होने दें इसी उद्देश्य से यह लिखा गया। राज्याभिषेक के बारह वर्ष बाद देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने यह लिखवाया।

शाहबाजगढ़ी का पंचम शिलालेख

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहते हैं—अच्छा काम करना कठिन है। जो अच्छा काम करने में लग जाता है वह कठिन काम करता है। पर मैंने बहुत से अच्छे काम किये हैं। इसलिए यदि मेरे पुत्र, नाती पोते और उनके बाद जो संतानें होंगी वे सब कल्प (के अन्त) तक वैसा अनुसरण करेंगे तो पुण्य करेंगे, किन्तु जो इस (कर्त्तव्य) का थोड़ा सा भी त्याग करेगा वह पाप करेगा। क्योंकि पाप करना आसान है। पूर्वकाल में धर्ममहामात्र नामक राजकर्मचारी नहीं होते थे। पर मैंने अपने राज्याभिषेक के तेरह वर्ष बाद धर्म-महामात्र नियुक्त किये। ये धर्म-महामात्र सब संप्रदायों के बीच धर्म में रत यवन, काम्बोज, गान्धार, राष्ट्रिक, पीतिनिक तथा पश्चिमी सीमा (पर रहने वाली जातियों) के बीच धर्म की स्थापना और वृद्धि के लिए तथा उनके हित और सुख के लिए नियुक्त हैं। वे स्वामी और सेवकों, ब्राह्मणों और धनवानों, अनाथों और वृद्धों के बीच, धर्म में अनुरक्त जनों के हित और सुख के लिए तथा (सांसारिक) लोभ और लालसा की बेड़ी से उनको मुक्त करने के लिए नियुक्त हैं। वे (अन्यायपूर्ण) वध और बन्धन को रोकने के लिए, बेड़ी से जकड़े हुओं को छुड़ाने के लिए और जो टोना, भूत प्रेत आदि की बाधाओं से पीड़ित हैं, उनकी रक्षा के लिए तथा (उन लोगों का ध्यान रखने के लिए) नियुक्त हैं जो बड़े परिवार वाले हैं या बहुत वृद्ध हैं। वे पाटलिपुत्र में और बाहर के नगरों में सब जगह हमारे भाइयों, बहिनों तथा दूसरे रिश्तेदारों के अन्तःपुरों में नियुक्त हैं। ये धर्ममहामात्र मेरे जीते हुए प्रदेशों में सब जगह धर्मानुरागी लोगों के बीच (यह देखने के लिए) नियुक्त हैं कि वे धर्म का आचरण किस प्रकार करते हैं, धर्म में उनकी कितनी निष्ठा है और दान देने में वे कितनी रुचि रखते हैं। यह धर्मलेख इस उद्देश्य से लिखा गया कि यह बहुत दिनों तक स्थित रहे और मेरी प्रजा इसके अनुसार आचरण करे।

शाहबाजगढ़ी का षष्ठ शिलालेख

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहते हैं :—अतीत काल में पहले बराबर हर समय राज्य का काम नहीं होता था और न हर समय प्रतिवेदकों (गुप्तचरों) से समाचार ही सुना जाता था। इसलिए मैंने यह (प्रबन्ध) किया है कि हर समय चाहे मैं खाता होऊं या अन्तःपुर में होऊं या गर्भगार (शयनगृह) में होऊं या टहलता होऊं या सवारी पर होऊं या कूच कर रहा होऊं, सब जगह सब समय प्रतिवेदक (गुप्तचर लोग) प्रजा का हाल मुझे सुनावें। मैं प्रजा का काम सब जगह करता हूँ। यदि मैं स्वयं अपने मुख से आज्ञा दूं कि (अमुक) दान दिया जाय या (अमुक) काम किया जाय या महामात्रों को कोई आवश्यक भार सौंपा जाय और यदि उस विषय में कोई विवाद (मतभेद) उनमें उपस्थित हो या (मंत्रि-परिषद्) उसे अस्वीकार करे, तो मैंने आज्ञा दी है कि तुरन्त ही हर घड़ी और हर जगह मुझे सूचना दी जाय। क्योंकि मैं कितना ही परिश्रम करूं और कितना ही राज-कार्य करूं मुझे संतोष नहीं होता। क्योंकि सब लोगों का हित करना मैं अपना कर्तव्य समझता हूँ। पर सब लोगों का हित करने से बढ़कर कोई बड़ा कार्य नहीं है। जो कुछ पराक्रम मैं करता हूँ सो इसलिए कि प्राणियों के प्रति जो मेरा ऋण है उससे उऋण हो जाऊं और इस लोक में लोगों को सुखी करूं तथा परलोक में उन्हें स्वर्ग का लाभ कराऊं। यह धर्मलेख इसलिए लिखाया गया कि यह चिरकाल तक स्थित रहे और मेरे पुत्र तथा नाती पोते सब लोगों के हित के लिए पराक्रम करें। पर बहुत अधिक पराक्रम के बिना यह कार्य कठिन है।

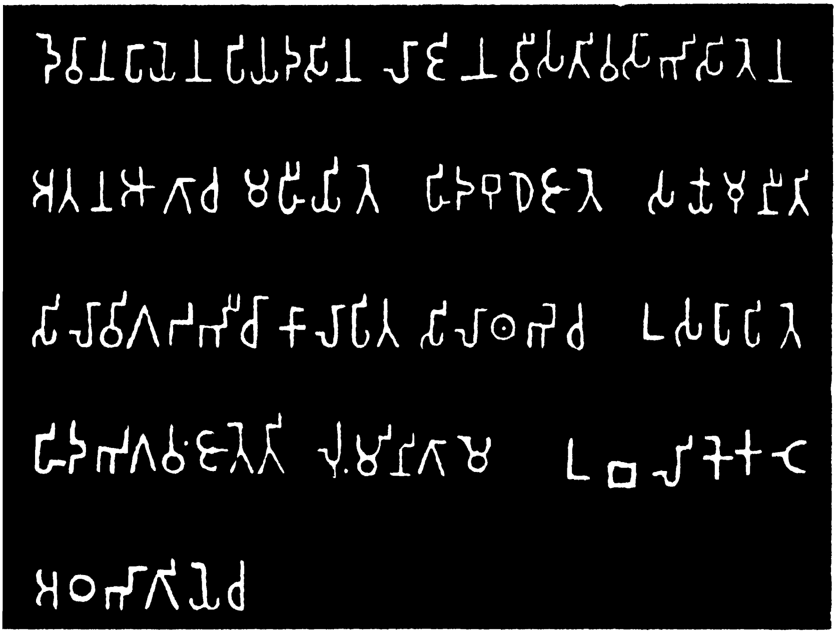
शाहबाजगढ़ी का सप्तम शिलालेख

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा चाहते हैं कि सब जगह सब संप्रदाय के लोग (एक साथ) निवास करें, क्योंकि सब संप्रदाय संयम और चित्त की शुद्धि चाहते हैं। परन्तु भिन्न भिन्न मनुष्यों की प्रवृत्ति तथा रुचि भिन्न भिन्न—ऊंची या नीची, अच्छी या बुरी होती है। वे या तो संपूर्ण रूप से या केवल आंशिक रूप से



शाहबाजगढ़ी का सप्तम शिलालेख जो खरोष्ठी अक्षरों में है और दांई ओर से बांई ओर को पढ़ा जाता है ।

१. देवनं प्रियो प्रियशि रज सन्नत्र इछति सव्र
२. प्रषंड वसेयु सवे हि ते सयमे भवशुधि च इछन्ति
३. जनो चु उचवुचछंदो उचवुचरगो ते सव्रं एकदेशं व
४. पि कषंति विपुले पि चु दने यस नस्ति सयम भव
५. शुधि किटनत व्रिढभतित निचे पढं



रुम्मिनदेई के स्तम्भ पर खुदा हुआ यह लेख ब्राह्मी अक्षरों में है और बांई ओर मे दांई ओर को पढ़ा जाता है।

१. देवान पियेन पियदसिन लाजिन वीसतिवसाभिसितेन
२. अतन आगाच महीयिते हिद बुधे जाते सक्यमुनीति
३. सिलाविगडभीचा कालापित सिलाथमे च उसपापिते
४. हिद भगवं जातेति लुंमिनिगामे उबल्कि कट
५. अठभागिये च

[देखिए पृष्ठ ११५]

(अपने धर्म का पालन) करेंगे। किन्तु जो बहुत अधिक दान नहीं कर सकता उसमें संयम, चित्तशुद्धि, कृतज्ञता और दृढ़-भक्ति का होना नितान्त आवश्यक है।[1]

शाहबाजगढ़ी का अष्टम शिलालेख

अतीत काल में राजा लोग विहार-यात्रा के लिए निकलते थे। इन यात्राओं में मृगया (शिकार) और इसी तरह के दूसरे आमोद प्रमोद होते थे। परन्तु देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने राज्याभिषेक के दस वर्ष बाद जब से संबोधि (अर्थात् ज्ञान प्राप्ति के मार्ग) का अनुसरण किया (तबसे) धर्मयात्राओं (का प्रारंभ हुआ)। इन धर्म-यात्राओं में यह होता है :—ब्राह्मणों और श्रमणों का दर्शन करना और उन्हें दान देना, वृद्धों का दर्शन करना और उन्हें सुवर्ण दान देना, ग्रामवासियों के पास जाकर धर्म का उपदेश देना और धर्म-संबन्धी चर्चा करना। उस समय से अन्य (आमोद प्रमोद) के स्थान पर इसी धर्म-यात्रा में देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा बारंबार आनन्द लेते हैं।

शाहबाजगढ़ी का नवम शिलालेख

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहते हैं :—लोग विपत्ति में, पुत्र या कन्या के विवाह में, पुत्र के जन्म में, परदेश जाने के समय और इसी तरह के दूसरे (अवसरों पर) अनेक प्रकार के बहुत से मंगलाचार करते हैं। ऐसे अवसरों पर स्त्रियां अनेक प्रकार के गन्दे और निरर्थक मंगलाचार करती हैं। मंगलाचार करना

---

१. कोई कोई इस अन्तिम वाक्य का अर्थ इस प्रकार करते हैं :—"किन्तु जो बहुत दान करता है, पर जिसमें, चित्त-शुद्धि, कृतज्ञता और दृढ़ भक्ति नहीं है, वह अत्यन्त नीच या निकम्मा है।

ही चाहिए। किन्तु इस प्रकार के मंगलाचार अल्प फल देने वाले होते हैं। पर धर्म का जो मंगलाचार है वह महाफल देने वाला है। इस धर्म के मंगलाचार में दास और सेवकों के प्रति उचित व्यवहार, गुरुओंका आदर, प्राणियों की अहिंसा, श्रमणों और ब्राह्मणों को दान और इसी प्रकार के दूसरे (सत्कार्य) करने पड़ते हैं। इस लिए पिता या पुत्र या भाई या स्वामी या मित्र या परिचित या पड़ोसी को भी कहना चाहिए—"यह मंगलाचार अच्छा है, इसे तब तक करना चाहिए जब तक कि अभीष्ट कार्य की सिद्धि न हो। कार्य की सिद्धि हो जाने पर भी मैं इसे फिर करता रहूंगा।" दूसरे मंगलाचार अनिश्चित फल देने वाले हैं। उनसे उद्देश्य की सिद्धि हो या न हो। वे इस लोक में ही फल देने वाले हैं। पर धर्म का मंगलाचार सब काल के लिए है। इस धर्म के मंगलाचार से इस लोक में अभीष्ट उद्देश्य की प्राप्ति न भी हो, तब भी अनन्त पुण्य परलोक में प्राप्त होता है। परन्तु यदि इस लोक में अभीष्ट उद्देश्य की प्राप्ति हो जाय तो धर्म के मंगलाचार से दो लाभ होंगे अर्थात् इस लोक में अभीष्ट उद्देश्य की सिद्धि तथा परलोक में अनन्त पुण्य की प्राप्ति।

शाहबाजगढ़ी का दशम शिलालेख

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा यश व कीर्ति को बड़ी भारी वस्तु नहीं समझते। जो कुछ भी यश या कीर्ति वह चाहते हैं सो इसलिए कि वर्तमान और भविष्य में (मेरी) प्रजा धर्म की सेवा करने और धर्म के व्रत को पालन करने में उत्साहित हो। बस केवल इसीलिए देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा यश और कीर्ति को चाहते हैं। देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा जो भी पराक्रम करते हैं सो परलोक के लिए ही करते हैं, जिसमें कि सब लोग दोष से रहित हो जायं। अपुण्य ही एक मात्र दोष है। सब कुछ त्याग करके बड़ा पराक्रम किये बिना, कोई भी मनुष्य चाहे वह छोटा हो या बड़ा, इस (पुण्य) कार्य को नहीं कर सकता। बड़े आदमी के लिए तो ....

शाहबाजगढ़ी का ग्यारहवां शिलालेख

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहते हैं :—कोई ऐसा दान नहीं जैसा कि धर्म का दान है, (कोई ऐसा परिचय नहीं जैसा कि) धर्म का परिचय है, (कोई ऐसा बंटवारा नहीं, जैसा कि) धर्म का बंटवारा है, (कोई ऐसा संबंध नहीं जैसा कि) धर्म का संबंध है । धर्म यह है कि दास और सेवक के साथ उचित व्यवहार किया जाय, माता-पिता की सेवा की जाय, मित्र, परिचित, जातिबन्धु, श्रमणों और ब्राह्मणों को दान दिया जाय तथा प्राणियों की हिंसा न की जाय। इसके लिए पिता, पुत्र, भाई, स्वामी, मित्र, परिचित तथा पड़ोसी को भी यह कहना चाहिए —"यह पुण्य कार्य है, इसे करना चाहिए।" जो ऐसा करता है वह इस लोक को भी सिद्ध करता है और परलोक में उस धर्मदान से अनन्त पुण्य का भागी होता है।

शाहबाजगढ़ी का बारहवां शिलालेख

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा विविध दान और पूजा से गृहस्थ और संन्यासी सब संप्रदायवालों का सत्कार करते हैं। किन्तु देवताओं के प्रिय दान या पूजा की इतनी परवाह नहीं करते जितनी इस बात की कि सब संप्रदायों के सार (तत्त्व) की वृद्धि हो। (संप्रदायों के) सार की वृद्धि कई प्रकार से होती है, पर उसकी जड़ वाक्‌संयम है अर्थात् लोग केवल अपने संप्रदाय का आदर और बिना अवसर दूसरे संप्रदायों की निन्दा न करें। या विशेष अवसर पर निन्दा भी की जाय तो संयम के साथ। हर दशा में दूसरे संप्रदायों का आदर करना लोगों का कर्त्तव्य है। ऐसा करने से मनुष्य अपने संप्रदाय की अधिक उन्नति और दूसरे संप्रदायों का उपकार करता है। इसके विपरीत जो करता है वह अपने संप्रदाय को भी हानि पहुंचाता है और दूसरे संप्रदायों का भी अपकार करता है। क्योंकि जो कोई अपने संप्रदाय की भक्ति में आकर इस विचार से कि मेरे संप्रदाय का गौरव बढ़े, अपने संप्रदाय की प्रशंसा करता है और दूसरे संप्रदायों की निन्दा करता है, वह वास्तव में अपने संप्रदाय को ही गहरी हानि पहुंचाता है। इसलिए संयम ही अच्छा है अर्थात

लोग एक दूसरे के धर्म को ध्यान देकर सुनें और उसकी सेवा करें। क्योंकि देवताओं के प्रिय (राजा) की यह इच्छा है कि सब संप्रदाय वाले बहुश्रुत (भिन्न भिन्न संप्रदायों के सिद्धांतों से परिचित) तथा कल्याणकारक ज्ञान से युक्त हों। इसलिए जो लोग अपने अपने संप्रदाय में ही अनुरक्त हैं उनसे कहना चाहिए कि देवताओं के प्रिय दान या पूजा को इतना बड़ा नही समझते जितना इस बात को कि सब संप्रदायों के सार (तत्त्व) की वृद्धि हो। इस कार्य के निमित्त बहुत से धर्म-महामात्र, स्त्री-महामात्र, व्रजभूमिक तथा अन्य अनेक प्रकार के राजकर्मचारी नियुक्त हैं। इस का फल यह है कि अपने संप्रदाय की उन्नति होती है और धर्म का गौरव बढ़ता है।

शाहबाजगढ़ी का तेरहवां शिलालेख

राज्याभिषेक के आठ वर्ष बाद देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने कलिंग देश को विजय किया। वहाँ डेढ़ लाख मनुष्य (बन्दी बना कर देश से बाहर) ले जाये गये, एक लाख मनुष्य मारे गये और इससे कई गुणा आदमी (महामारी आदि से) मरे। इसके बाद अब जब कि कलिंग देश विजय हो गया है देवताओं के प्रिय द्वारा धर्म का तीव्र अध्ययन, धर्म का प्रेम और धर्म का अनुशासन अच्छी तरह हुआ है। कलिंग जीतने पर देवताओं के प्रिय को बड़ा पश्चात्ताप हुआ। क्योंकि जिस देश का पहले विजय नही हुआ है उस देश का विजय होने पर लोगों की हत्या, मृत्य और देश-निष्कासन होता है। देवताओं के प्रिय को इससे बहुत दुःख और खेद हुआ। देवताओं के प्रिय को इस बात से और भी दुःख हुआ कि वहाँ ब्राह्मण और श्रमण तथा अन्य संप्रदाय के लोग और गृहस्थ रहते हैं, जिनमें ब्राह्मणों की सेवा, माता पिता की सेवा, गुरुओं की सेवा, मित्र, परिचित, सहायक, जाति, दास और सेवकों के प्रति उचित व्यवहार और दृढ़ भक्ति पायी जाती है। ऐसे लोगों का विनाश, वध या प्रियजनों से बलात् वियोग होता है। अथवा जो स्वयं तो सुरक्षित होते हैं, पर जिनके मित्र, परिचित, सहायक और सम्बन्धी विपत्ति में फंस जाते हैं, उन्हें भी अत्यन्त स्नेह के कारण बड़ी पीड़ा होती है। यह विपत्ति सबके हिस्से में पड़ती है और इस से देवताओं के प्रिय को विशेष दुःख हुआ। कोई ऐसा देश नहीं जहाँ लोग

कोई न कोई संप्रदाय को न मानते हों। इसलिए कलिंग देश के विजय में उस समय जितने आदमी मारे गये, मरे या देश से निष्कासित हुए उनके सौवें या हज़ारवें हिस्से का नाश भी अब देवताओं के प्रिय को बड़े दुःख का कारण होगा। (अब तो) कोई देवताओं के प्रिय का अपकार भी करे तो वे उसे, यदि वह क्षमा के योग्य है तो, क्षमा कर देंगे। देवताओं के प्रिय के राज्य में जितने वनवासी लोग हैं उनको भी वे सन्तुष्ट रखते हैं और उन्हें धर्म में लाने का यत्न करते हैं। क्योंकि (यदि वे ऐसा न करें तो) उन्हें पश्चात्ताप होता है। यह देवताओं के प्रिय का प्रभाव (महत्व) है। उन लोगों से वह कहते हैं कि वे (बुरे मार्ग पर चलने से) लज्जित हों जिसमें कि मृत्युदण्ड से बचे रहें। देवताओं के प्रिय चाहते हैं कि सब प्राणियों के साथ अहिंसा, संयम, समानता और (मृदुता) का व्यवहार किया जाय। धर्म-विजय को ही देवताओं के प्रिय सबसे मुख्य विजय मानते हैं। यह धर्म-विजय देवताओं के प्रिय ने यहाँ (अपने राज्य में) तथा ६ सौ योजन दूर उन सब सीमा-वर्ती राज्यों में प्राप्त की है, जहाँ अन्तियोक नामक यवन राजा राज्य करता है और उस अन्तियोक राजा के परे चार राजा अर्थात् तुरमय, अन्तिकिनि, मक और अलिकसुदर राज्य करते हैं (और) इसी प्रकार अपने राज्य के नीचे (दक्षिण में) चोड़, पांड्य तथा ताम्रपर्णी (लंका) तक (विजय प्राप्त की है)। इसी प्रकार यहाँ राजा के राज्य में, यवनों में, काम्बोजों में, नाभकों में, नाभपंक्तियों में, भोजों में, पितिनिकों में, आन्ध्रों में और पुलिंदों में सब जगह लोग देवताओं के प्रिय के धर्मानुशासन का अनुसरण करते हैं। जहाँ जहाँ देवताओं के प्रिय के दूत नहीं पहुँच सकते वहाँ वहाँ भी लोग देवताओं के प्रिय का धर्माचरण, धर्म-विधान और धर्मानुशासन सुन कर धर्म का आचरण करते हैं और करेंगे। इस प्रकार सर्वत्र जो विजय हुई है—बार बार विजय हुई है—वह वास्तव में आनन्द की देने वाली है। धर्म की विजय में (अपार) आनन्द मिला है। पर यह आनन्द तुच्छ वस्तु है। देवताओं के प्रिय पारलौकिक कल्याण को ही बड़ी भारी (आनन्द की) वस्तु समझते हैं। इसलिए यह धर्मलेख लिखा गया है कि मेरे पुत्र और पौत्र नया (देश) विजय करना अपना कर्त्तव्य न समझें। यदि कभी वे नया देश विजय करें भी तो क्षमा और दया से काम लेना चाहिये और धर्म-विजय को ही असली विजय मानना चाहिए। इससे यह लोक और परलोक दोनों बनते हैं। धर्म का प्रेम ही उनका (सबसे मुख्य) प्रेम हो। क्योंकि उससे यह लोक और परलोक (दोनों सिद्ध होते है)।

शाह्बाजगढ़ी का चौदहवां शिलालेख

यह धर्म-लेख देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने लिखवाये हैं। (यह धर्म-लेख) कहीं संक्षेप में और कहीं विस्तृत रूप में हैं। क्योंकि सब जगह सब लागू नही होता।[1] मेरा राज्य बहुत विस्तृत है, इसलिए बहुत से लेख लिखवाये गये हैं और बहुत से लिखवाये जायेंगे। कहीं कहीं विषय की रोचकता के कारण एक ही बात को बार बार कहा गया है, जिससे कि लोग उसके अनुसार आचरण करें। इस लेख में (जो) कुछ अपूर्ण लिखा गया हो उसका कारण देश-भेद, संक्षिप्त लेख या लिखने वाले का अपराध समझना चाहिए।

मानसेहरा में चट्टान पर खुदा हुआ प्रथम शिलालेख

यह धर्मलेख देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने लिखवाया है। यहाँ (मेरे राज्य में) कोई जीव मार कर होम न किया जाय और समाज (मेला, उत्सव या गोष्ठी जिसमें हिंसा आदि होती हो) न किया जाय। क्योंकि देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा (ऐसे) समाज में बहुत से दोष देखते हैं। परन्तु एक प्रकार के ऐसे समाज (मेले, उत्सव) हैं जिन्हें देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा अच्छा समझते हैं। पहले देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा की पाकशाला में प्रति-दिन कई हज़ार जीव सूप (शोरबा) बनाने के लिए मारे जाते थे। पर अब जबकि यह धर्मलेख लिखा जा रहा है, केवल तीन ही जीव प्रतिदिन मारे जाते हैं, दो मोर और एक मृग। पर मृग का मारा जाना निश्चित नहीं है। भविष्य में यह तीनों प्राणी भी नहीं मारे जायेंगे।

---

१. किसी किसी ने इस वाक्य का अर्थ इस प्रकार किया है :—"सब जगह सब बातें या सब लेख नहीं लिखे गये हैं।"

मानसेहरा का द्वितीय शिलालेख

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा के जीते हुए प्रदेश में सब जगह तथा जो सीमावर्ती राज्य हैं जैसे चोड़, पांड्य, सत्यपुत्र, केरलपुत्र, ताम्रपर्णी वहाँ तथा अन्तियोक नामक यवनराजा और जो उस अन्तियोक (सीरिया का राजा) के समीप सामन्त राजा हैं, उन सब के देशों में देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने दो प्रकार की चिकित्सा का प्रबन्ध किया है—एक मनुष्यों की चिकित्सा के लिए और दूसरा पशुओं की चिकित्सा के लिए। औषधियां भी मनुष्यों और पशुओं के लिए जहाँ जहाँ नहीं थीं वहाँ वहाँ लायी और रोपी गयी हैं। इसी तरह मूल और फल भी जहाँ जहाँ नहीं थे वहाँ वहाँ सब जगह लाये और रोपे गये हैं। मार्गों में मनुष्यों और पशुओं के आराम के लिए वृक्ष लगाये गये और कुँएं खुदवाये गये हैं।

मानसेहरा का तृतीय शिलालेख

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहते हैं:—राज्याभिषेक के बारह वर्ष बाद मैंने यह आज्ञा दी है कि मेरे राज्य में सब जगह युक्त, रज्जुक और प्रादेशिक नामक राज-कर्मचारी पांच-पांच वर्ष पर इसी काम के लिए अर्थात् धर्म की शिक्षा देने के लिए तथा और और कामों के लिए यह प्रचार करते हुए दौरा करें कि "माता पिता की सेवा करना अच्छा है; मित्र, परिचित, स्वजातिबान्धव तथा ब्राह्मण और श्रमण को दान देना अच्छा है; जीवहिंसा न करना अच्छा है; थोड़ा व्यय और थोड़ा संचय करना अच्छा है।" (अमात्यों की) परिषद् भी युक्त नामक कर्मचारियों को आज्ञा देगी कि वे इन नियमों के वास्तविक भाव और अक्षर के अनुसार इनका पालन करें।

मानसेहरा का चतुर्थ शिलालेख

अतीत काल में–कई सौ वर्षो से–प्राणियों का वध, जीवों की हिंसा, बन्धुओं का अनादर तथा श्रमणों और ब्राह्मणों का अनादर बढ़ता ही गया। पर आज देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा के धर्माचरण से भेरी (युद्ध के नगाड़े) का शब्द धर्म की भेरी के शब्द में बदल गया है। देव-विमान, हाथी, (नरक-सूचक) अग्नि की ज्वाला और अन्य दिव्य दृश्यों के प्रदर्शनों द्वारा जैसा पहले कई सौ वर्षो से नहीं हुआ था वैसा आज देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा के धर्मानुशासन से प्राणियों की अहिंसा, जीवों की रक्षा, बन्धुओं का आदर, ब्राह्मणों और श्रमणों का आदर, माता पिता की सेवा तथा बूढ़ों की सेवा बढ़ गयी है। यह तथा अन्य प्रकार के धर्माचरण बढ़े हैं। इस धर्माचरण को देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा और भी बढ़ायेंगे। देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा के पुत्र, नाती (पोते), परनाती (परपोते) इस धर्माचरण को कल्प के अन्त तक बढ़ाते रहेंगे और धर्म तथा शील का पालन करते हुए धर्म के अनुशासन का प्रचार करेंगे। क्योंकि धर्म का अनुशासन श्रेष्ठ कार्य है। जो शीलवान् नहीं है वह धर्म का आचरण भी नहीं कर सकता। इसलिए इस (धर्माचरण) की वृद्धि करना तथा इसकी हानि न होने देना अच्छा है। लोग इस बात की वृद्धि में लगें और इसकी हानि न होने दें इसी उद्देश्य से यह लिखा गया। राज्याभिषेक के बारह वर्ष बाद देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने यह लिखवाया।

मानसेहरा का पंचम शिलालेख

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहते हैं :—अच्छा काम करना कठिन है। जो अच्छा काम करने में लग जाता है वह कठिन काम करता है। पर मैंने बहुत से अच्छे काम किये हैं। इसलिए यदि मेरे पुत्र, नाती, पोते और उनके बाद जो सन्तानें होंगी वे सब कल्प (के अन्त) तक वैसा अनुसरण करेंगे तो पुण्य करेंगे, किन्तु जो इस (कर्त्तव्य) का थोड़ा सा भी त्याग करेगा वह पाप करेगा। क्योंकि पाप

करना आसान है। पूर्वकाल में धर्म-महामात्र नामक राजकर्मचारी नहीं होते थे। पर मैंने अपने राज्याभिषेक के तेरह वर्ष बाद धर्म-महामात्र नियुक्त किये। ये धर्म-महामात्र सब संप्रदायों के बीच धर्म में रत यवन, काम्बोज, गान्धार, राष्ट्रिक, पितिनिक तथा पश्चिमी सीमा (पर रहने वाली जातियों) के बीच धर्म की स्थापना और वृद्धि के लिए तथा उनके हित और सुख के लिए नियुक्त हैं। वे स्वामी और सेवकों, ब्राह्मणों और धनवानों, अनाथों और वृद्धों के बीच, धर्म में अनुरक्त जनों के हित और सुख के लिए तथा (सांसारिक) लोभ और लालसा की बेड़ी से उनको मुक्त करने के लिए नियुक्त हैं। वे (अन्यायपूर्ण) वध और बन्धन को रोकने के लिए, बेड़ी से जकड़े हुओं को छुड़ाने के लिए और जो टोना, भूत-प्रेत आदि की बाधाओं से पीड़ित है उनकी रक्षा के लिए तथा (उन लोगों का ध्यान रखने के लिए) नियुक्त हैं जो बड़े परिवार वाले हैं तथा वृद्ध हैं। वे पाटलिपुत्र में और बाहर के नगरों में सब जगह हमारे भाइयों, बहिनों तथा दूसरे रिश्तेदारों के अन्तःपुरों में नियुक्त है। ये धर्ममहामात्र मेरे राज्य में सब जगह धर्मानुरागी लोगों के बीच (यह देखने के लिए) नियुक्त हैं कि वे धर्म का आचरण किस प्रकार करते हैं, धर्म में उनकी कितनी निष्ठा है और दान देने में वे कितनी रुचि रखते हैं। यह धर्मलेख इस उद्देश्य से लिखा गया है कि यह बहुत दिनों तक स्थित रहे और मेरी प्रजा इसके अनुसार आचरण करे।

मानसेहरा का षष्ठ शिलालेख

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहते हैं :—अतीत काल में पहले बराबर हर समय राज्य का काम नहीं होता था और न हर समय प्रतिवेदकों (गुप्तचरों) से समाचार ही सुना जाता था। इसलिए मैंने यह (प्रबन्ध) किया है कि हर समय चाहे मैं खाता होऊं या अन्तःपुर में होऊं या गर्भागार (शयनगृह) में होऊं या टहलता होऊं या सवारी पर होऊं या कूच कर रहा होऊं, सब जगह प्रतिवेदक (गुप्तचर लोग) प्रजा का हाल मुझे सुनावें। मैं प्रजा का काम सब जगह करता हूँ।

यदि मैं स्वयं अपने मुख से आज्ञा दूं कि (अमुक) दान दिया जाय या (अमुक) काम किया जाय या महामात्रों को कोई आवश्यक भार सौंपा जाय और उस विषय में कोई विवाद (मतभेद) उनमें उपस्थित हो या (मंत्रिपरिषद्) उसे अस्वीकार करे तो मैंने आज्ञा दी है कि तुरन्त ही हर घड़ी और हर जगह मुझे सूचना दी जाय। क्योंकि मैं कितना ही परिश्रम करूं और कितना ही राजकार्य करूं मुझे संतोष नहीं होता। क्योंकि सब लोगों का हित करना मैं अपना प्रधान कर्त्तव्य समझता हूँ। पर सब लोगों का हित, परिश्रम और राज-कार्य-सम्पादन के बिनानहीं हो सकता। सब लोगों का हित करने से बढ़कर कोई बड़ा कार्य नहीं है। जो कुछ पराक्रम मैं करता हूँ सो इसलिए कि प्राणियों के प्रति जो मेरा ऋण है उससे उऋण हो जाऊं और इस लोक में लोगों को सुखी करूं तथा परलोक में उन्हें स्वर्ग का लाभ कराऊं। यह धर्मलेख इसलिए लिखाया गया कि यह चिरकाल तक स्थित रहे और मेरे पुत्र, तथा नातीपोते सब लोगों के हित के लिए पराक्रम करें। पर बहुत अधिक पराक्रम के बिना यह कार्य कठिन है।

मानसेहरा का सप्तम शिलालेख

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा चाहते हैं कि सब जगह सब संप्रदाय के लोग (एक साथ) निवास करें। क्योंकि सब संप्रदाय संयम और चित्त की शुद्धि चाहते हैं। परन्तु भिन्न भिन्न मनुष्यों की प्रवृत्ति तथा रुचि भिन्न भिन्न—ऊंची या नीची अच्छी या बुरी होती है। वे या तो संपूर्णरूप से या केवल आंशिक रूप से (अपने धर्म का पालन) करेंगे। किन्तु जो बहुत अधिक दान नहीं कर सकता उसमें संयम, चित्तशुद्धि, कृतज्ञता और दृढ़ भक्ति का होना नितान्त आवश्यक है।[1]

---

१. कोई कोई इस अन्तिम वाक्य का अर्थ इस प्रकार करते हैं :—"किन्तु जो बहुत दान करता है, पर जिसमें संयम, चित्त-शुद्धि, कृतज्ञता और दृढ़ भक्ति नहीं है, वह अत्यन्त नीच या निकम्मा है।"

मानसेहरा का अष्टम शिलालेख

अतीत काल में राजा लोग विहार-यात्रा के लिए निकलते थे। इन यात्राओं में मृगया (शिकार) और इसी तरह के दूसरे आमोद-प्रमोद होते थे। परन्तु देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने राज्याभिषेक के दस वर्ष बाद जबसे संबोधि (अर्थात ज्ञानप्राप्ति के मार्ग) का अनुसरण किया, (तब से) धर्म-यात्राओं (का प्रारम्भ हुआ)। इन धर्म-यात्राओं में यह होता है—ब्राह्मणों और श्रमणों का दर्शन करना और उन्हें दान देना, वृद्धों का दर्शन करना और उन्हें सुवर्ण दान देना, ग्रामवासियों के पास जाकर धर्म का उपदेश देना और उचित धर्म-संबन्धी चर्चा करना। उस समय से अन्य (आमोद प्रमोद के) स्थान पर इसी धर्म-यात्रा में देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा बारम्बार आनन्द लेते हैं।

मानसेहरा का नवम शिलालेख

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहते हैं:— लोग विपत्ति में, पुत्र या कन्या के विवाह में, पुत्र के जन्म में, परदेश जाने के समय और इसी तरह के दूसरे (अवसरों पर) अनेक प्रकार के बहुत से मंगलाचार करते हैं। ऐसे अवसरों पर स्त्रियां अनेक प्रकार के तुच्छ और निरर्थक मंगलाचार करती हैं। मंगलाचार करना ही चाहिए। किन्तु इस प्रकार के मंगलाचार अल्पफल देने वाले होते हैं। पर धर्म का जो मंगलाचार है वह महाफल देने वाला है। इस धर्म के मंगलाचार में दास और सेवकों के प्रति उचित व्यवहार, गुरुओं का आदर, प्राणियों की अहिंसा, श्रमणों और ब्राह्मणों को दान और इसी प्रकार के दूसरे (सत्कार्य) करने पड़ते हैं। इसलिए पिता या पुत्र या भाई या स्वामी या मित्र या परिचित या पड़ोसी को भी कहना चाहिए—"यह मंगलाचार अच्छा है, इसे तब तक करना चाहिए जब तक कि अभीष्ट कार्य की सिद्धि न हो। कार्य की सिद्धि हो जाने पर भी मैं इसे फिर करता रहूंगा।" दूसरे मंगलाचार अनिश्चित फल देने वाले हैं। उनसे उद्देश्य की सिद्धि हो या न हो। वे इस लोक में ही फल देने वाले हैं। पर

धर्म का मंगलाचार सब काल के लिए है । इस धर्म के मंगलाचार से इस लोक में अभीष्ट उद्देश्य की प्राप्ति न भी हो, तब भी अनन्त पुण्य परलोक में प्राप्त होता है। परन्तु यदि इस लोक में अभीष्ट उद्देश्य की प्राप्ति हो जाय तो धर्म के मंगलाचार से दो लाभ होंगे अर्थात् इस लोक में अभीष्ट उद्देश्य की सिद्धि तथा परलोक में अनन्त पुण्य की प्राप्ति ।

मानसेहरा का दशम शिलालेख

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा यश व कीर्ति को बड़ी भारी वस्तु नहीं समझते। जो कुछ भी यश या कीर्ति वह चाहते हैं सो इसलिए कि वर्तमान में और भविष्य में (मेरी) प्रजा धर्म की सेवा करने और धर्म के व्रत को पालन करने में उत्साहित हो। बस केवल इसीलिए देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा यश और कीर्ति को चाहते हैं । देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा जो भी पराक्रम करते हैं सो परलोक के लिए ही करते हैं, जिसमें कि सब लोग दोष से रहित हो जायं। अपुण्य ही एकमात्र दोष है । सब कुछ त्याग करके बड़ा पराक्रम किये बिना, कोई भी मनुष्य चाहे वह छोटा हो या बड़ा, इस (पुण्य) कार्य को नहीं कर सकता। बड़े आदमी के लिए तो यह और भी कठिन है ।

मानसेहरा का ग्यारहवां शिलालेख

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहते हैं :—कोई ऐसा दान नहीं जैसा कि धर्म का दान है, (कोई ऐसा परिचय नहीं जैसा कि) धर्म का परिचय है, (कोई ऐसा बंटवारा नहीं जैसा कि) धर्म का बंटवारा है, (कोई ऐसा सम्बन्ध नहीं जैसा कि) धर्म का सम्बन्ध है । धर्म यह है कि दास और सेवक के साथ उचित व्यवहार किया जाय; माता पिता की सेवा की जाय; मित्र, परिचित,

जातिबन्ध, श्रमणों और ब्राह्मणों को दान दिया जाय तथा प्राणियों की हिंसा न की जाय। इसके लिए पिता, पुत्र, भाई, स्वामी, मित्र, परिचित, तथा पड़ोसी को भी यह कहना चाहिए :—"यह पुण्य कार्य है, इसे करना चाहिए।" जो ऐसा करता है वह इस लोक को भी सिद्ध करता है और परलोक में भी उस धर्मदान से अनन्त पुण्य का भागी होता है।

मानसेहरा का बारहवां शिलालेख

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा विविध दान और पूजा से गृहस्थ और संन्यासी सब संप्रदायवालों का सत्कार करते हैं। किन्तु देवताओं के प्रिय दान या पूजा की इतनी परवाह नहीं करते जितनी इस बात की कि सब संप्रदायों के सार (तत्त्व) की वृद्धि हो। (संप्रदायों के) सार की वृद्धि कई प्रकार से होती है, पर उसकी जड़ वाक्-संयम है अर्थात् लोग केवल अपने संप्रदाय का आदर और बिना अवसर दूसरे संप्रदायों की निंदा न करें। या विशेष अवसर पर निन्दा भी की जाय तो संयम के साथ। हर दशा में दूसरे संप्रदायों का आदर करना लोगों का कर्त्तव्य है। ऐसा करने से मनुष्य अपने संप्रदाय की अधिक उन्नति और दूसरे संप्रदायों का उपकार करता है। इसके विपरीत जो करता है वह अपने संप्रदाय को भी हानि पहुँचाता है और दूसरे संप्रदायों का भी अपकार करता है। क्योंकि जो कोई अपने संप्रदाय की भक्ति में आकर इस विचार से कि मेरे संप्रदाय का गौरव बढ़े, अपने संप्रदाय की प्रशंसा करता है और दूसरे संप्रदायों की निन्दा करता है, वह वास्तव में अपने संप्रदाय को ही गहरी हानि पहुंचाता है। इसलिए समवाय (परस्पर मेलजोल से रहना) ही अच्छा है अर्थात् लोग एक दूसरे के धर्म को ध्यान देकर सुनें और उसकी सेवा करें। क्योंकि देवताओं के प्रिय (राजा) की यह इच्छा है कि सब संप्रदाय वाले बहुश्रुत (भिन्न भिन्न संप्रदायों के सिद्धांतों से अवगत) तथा कल्याणकारक ज्ञान से युक्त हों। इसलिए जो लोग अपने अपने संप्रदाय में ही अनुरक्त हैं उनसे कहना चाहिए कि देवताओं के प्रिय दान या पूजा को इतना बड़ा नहीं समझते जितना इस

बात को कि सब संप्रदायों के सार (तत्त्व) की वृद्धि हो। इस कार्य के निमित्त बहुत से धर्म-महामात्र, स्त्री-महामात्र, व्रजभूमिक तथा अन्य अनेक प्रकार के राज-कर्मचारी नियुक्त हैं। इसका फल यह है कि अपने संप्रदाय की उन्नति होती है और धर्म का गौरव बढ़ता है।

मानसेहरा का तेरहवां शिलालेख

राज्याभिषेक के आठ वर्ष बाद देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने कलिंग देश को विजय किया। वहाँ डेढ़ लाख मनुष्य······मरे। इसके बाद अब जबकि कलिंग देश विजय हो गया है, देवताओं के प्रिय द्वारा धर्म का तीव्र अध्ययन,······धर्म का अनुशासन ··· मृत्यु और देश-निष्कासन होता है। देवताओं के प्रिय को इससे बहुत दुःख और खेद हुआ।····· इस बात से और भी·····जिनमें ब्राह्मणों की सेवा, माता पिता की सेवा, गुरुओं की सेवा, मित्र, परिचित·····वध या प्रियजनों से बलात् वियोग होता है। अथवा जो स्वयं तो सुरक्षित हैं, पर जिनके मित्र···· उन्हें भी अत्यन्त स्नेह के कारण ····· देवताओं के प्रिय को विशेष दुःख होता है। यवनों के देश को छोड़कर कोई देश ऐसा नहीं जहाँ लोग ब्राह्मण, श्रमण आदि भिन्न-भिन्न वर्गों में न विभक्त हों। इस जनपद में भी········। इसलिए कलिंग देश के विजय में जितने आदमी मारे गये······या देश से निष्कासित हुए उनके सौवें या हज़ारवें हिस्से का नाश भी अब देवताओं के प्रिय को बड़े दुःख का कारण होगा।······ देवताओं के प्रिय के राज्य में जितने वनवासी लोग हैं उनको भी वे सन्तुष्ट रखते हैं और उन्हें धर्म में लाने का यत्न करते हैं। क्योंकि (यदि वे ऐसा न करें तो) उन्हें पश्चात्ताप होगा। देवताओं के प्रिय का यह प्रभाव है···उन लोगों से वह कहते हैं······धर्म-विजय को ही देवताओं के प्रिय सब से मुख्य विजय मानते हैं। यह धर्म-विजय देवताओं के प्रिय ने यहाँ (अपने राज्य में) तथा ६ सौ योजन दूर उन सीमावर्ती राज्यों में प्राप्त की है जहाँ अन्तियोक नामक यवन राजा राज्य करता है······मक और अलिकसुदर राज्य करते हैं और

इसी प्रकार अपने राज्य के नीचे (दक्षिण में) चोड़, पांड्य तथा ताम्रपर्णी (लंका) तक (विजय प्राप्त की है)। इसी प्रकार यहाँ (राजा के राज्य में) यवनों में, कम्बोजों में, नाभकों में, नाभ-पंक्तियों में, भोजों में, पितिनिकों में, आन्ध्रों में······जहाँ जहाँ देवताओं के प्रिय के दूत नहीं पहुंच सकते वहाँ वहाँ भी लोग देवताओं के प्रिय का धर्माचरण, धर्म-विधान और धर्मानुशासन सुनकर धर्म का आचरण करते हैं और करेंगे·। इस प्रकार सर्वत्र जो विजय हुई है···· देवताओं के प्रिय पारलौकिक कल्याण को ही बड़ा भारी (आनन्द की) वस्तु समझते हैं। इसलिए यह धर्मलेख लिखा गया कि मेरे पुत्र और पौत्र नया (देश) विजय······इससे यह लोक और परलोक दोनों बनता है। धर्म का प्रेम ही उनका (सबसे मुख्य) प्रेम हो। क्योंकि इससे यह लोक और परलोक (दोनों सिद्ध होते हैं)।

मानसेहरा का चौदहवां शिलालेख

यह धर्मलेख देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने लिखवाया है।·········· लिखवाये गये हैं और लिखवाये जायेंगे। कहीं कहीं विषय की रोचकता के कारण एक ही बात को बार बार कहा गया है, जिसमें कि लोग उसके अनुसार आचरण करें। इस लेख में जो कुछ अपूर्ण लिखा गया हो·············· ········संक्षिप्त लेख·············

येर्रागुडी में चट्टान पर खुदा हुआ प्रथम शिलालेख

यह धर्मलेख देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने लिखवाया है। यहाँ (मेरे राज्य में) कोई जीव मार कर होम न किया जाय और समाज (मेला, उत्सव या गोष्ठी जिसम हिंसा आदि होती हो) न किया जाय। क्योंकि देवताओं के प्रिय

प्रियदर्शी राजा ऐसे समाज (मेले, उत्सव) में बहुत से दोष देखते हैं। परन्तु एक प्रकार के ऐसे समाज (मेले, उत्सव) हैं जिन्हें देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा, अच्छा समझते हैं। पहले देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा की पाकशाला में प्रतिदिन कई हजार जीव सूप (शोरबा) बनाने के लिए मारे जाते थे। पर अब जबकि यह धमलेख लिखा जा रहा है केवल तीन ही जीव प्रतिदिन मारे जाते हैं—दो मोर और एक मृग[1]। पर मृग का मारा जाना निश्चित नहीं ह। यह तीनों प्राणी भी भविष्य में नहीं मारे जायेंगे।

येर्रागुडी का द्वितीय शिलालेख

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा के राज्य में सब जगह तथा जो सीमावर्ती राज्य हैं जैसे चोड़, पांड्य, सत्यपुत्र, ताम्रपर्णी (लंका) तक और अन्तियोक नामक यवनराज और जो उस अन्तियोक के समीप सामन्त राजा हैं, उन सबके देशों में देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने दो प्रकार की चिकित्सा का प्रबन्ध किया है-एक मनुष्यों की चिकित्सा के लिए और दूसरा पशुओं की चिकित्सा के लिए। औषधियां भी मनुष्यों और पशुओं के लिए जहाँ जहाँ नहीं थीं, वहाँ वहाँ लायी और रोपी गयी हैं। इसी तरह से मूल और फल भी जहाँ जहाँ नहीं थे वहाँ वहाँ सब जगह लाये और रोपे गये हैं। मार्गों में पशुओं और मनुष्यों के आराम के लिए वृक्ष लगाये गये और कुँएँ खुदवाये गये हैं।

---

१. कोई कोई "मृग" को पशु तथा "मोर" को पक्षी के अर्थ में लेते हैं और इस वाक्य का अर्थ इस प्रकार करते हैं :—"पर अब जब कि यह धर्मलेख लिखा जा रहा है केवल तीन ही जीव प्रतिदिन मारे जाते हैं, दो पक्षी और एक पशु।"

येर्रागुडी का तृतीय शिलालेख

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहते हैं :—राज्याभिषेक के बारह वर्ष बाद मैंने यह आज्ञा दी है कि मेरे राज्य में सब जगह युक्त, रज्जुक और प्रादेशिक नामक राजकर्मचारी पांच पांच वर्ष पर इसी काम के लिए अर्थात् धर्म की शिक्षा देने के लिए तथा और और कामों के लिए सब जगह (यह प्रचार करते हुए) दौरा कर कि "माता पिता की सेवा करना अच्छा है; मित्र, परिचित, स्वजाति वालों तथा ब्राह्मण और श्रमण को दान देना अच्छा है; जीव-हिंसा न करना अच्छा है; थोड़ा व्यय करना और थोड़ा संचय करना अच्छा है।" (अमात्यों की) परिषद् भी युक्त नामक कर्मचारियों को आज्ञा देगी कि वे इन नियमों के वास्तविक भाव और अक्षर के अनुसार इनका पालन करें।

येर्रागुडी का चतुर्थ शिलालेख

अतीत काल में—कई सौ वर्षों से—प्राणियों का वध, जीवों की हिंसा, बन्धुओं का अनादर तथा श्रमणों और ब्राह्मणों का अनादर बढ़ता ही गया। पर अब देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा के धर्माचरण से भेरी (युद्ध के नगाड़े) का शब्द धर्म की भेरी के शब्द में बदल गया है। देव-विमान, हाथी, (नरक-सूचक) अग्नि की ज्वाला और अन्य दिव्य दृश्यों के प्रदर्शनों द्वारा जैसा पहले कई सौ वर्षों से नहीं हुआ था वैसा आज देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा के धर्मानुशासन से प्राणियों की अहिंसा, जीवों की रक्षा, बन्धुओं का आदर, ब्राह्मणों और श्रमणों का सत्कार, माता पिता की सेवा तथा बूढ़ों की सेवा बढ़ गयी है। यह तथा अन्य बहुत प्रकार के धर्माचरण बढ़े हैं। इस धर्माचरण को देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा और भी बढ़ायेंगे। देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा के पुत्र, नाती (पोते), परनाती (परपोते) इस धर्माचरण को कल्प के अन्त तक बढ़ाते रहेंगे और धर्म तथा शील का पालन करते हुए धर्म के अनुशासन का प्रचार करेंगे। क्योंकि धर्म का अनुशासन श्रेष्ठ कार्य है। जो शीलवान् नहीं है वह धर्म का आचरण भी नहीं कर सकता। इसलिए इस

(धर्माचरण) की वृद्धि करना तथा इसकी हानि न होने देना अच्छा है। (लोग) इस बात की वृद्धि में लगें और इसकी हानि न होने दें इसी उद्देश्य से यह लिखा गया है। राज्याभिषेक के बारह वर्ष बाद देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने यह लिखवाया।

येर्रागुडी का पंचम शिलालेख

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहते हैं :—अच्छा काम करना कठिन है। जो अच्छा काम करने में लग जाता है वह कठिन काम करता है। पर मैंने बहुत से अच्छे काम किये हैं। इसलिए यदि मेरे पुत्र, नाती, पोते और उनके बाद जो सन्तानें होंगी वे सब कल्प के अन्त तक वैसा अनुसरण करेंगे तो पुण्य करेंगे। किन्तु जो इस कर्त्तव्य का थोड़ा सा भी त्याग करेगा वह पाप करेगा। क्योंकि पाप करना आसान है। पूर्वकाल में धर्म-महामात्र नाम के राजकर्मचारी नहीं होते थे। पर मैंने अपने राज्याभिषेक के तेरह वर्ष बाद धर्म-महामात्र नियुक्त किये। ये धर्म-महामात्र सब संप्रदायों के बीच, धर्म में रत लोगों तथा यवन, काम्बोज, गान्धार राष्ट्रिक, पितिनिक और पश्चिमी सीमा (पर रहने वाली जातियों) के बीच धर्म की स्थापना, धर्म की वृद्धि तथा उनके हित और सुख के लिए नियुक्त हैं। वे स्वामी और सेवकों, ब्राह्मणों और धनवानों, अनाथों और वृद्धों के बीच धर्म में अनुरक्त जनों के हित और सुख के लिए तथा (सांसारिक) लोभ और लालसा की बेड़ी से उनको मुक्त करने के लिए नियुक्त हैं, वे (अन्यायपूर्ण) वध और बन्धन को रोकने के लिए, बेड़ी से जकड़े हुओं को छुड़ाने के लिए और जो भूत-प्रेत आदि की बाधाओं से पीड़ित[1] हैं उनकी रक्षा के लिए तथा (उन लोगों का ध्यान रखने के लिए) नियुक्त हैं जो बड़े परिवार वाले हैं या बहुत बुड्ढे हैं। वे यहाँ (पाटलिपुत्र) में और बाहर के नगरों में सब जगह हमारे भाइयों, बहिनों तथा दूसरे रिश्तेदारों के

---

१. "और जो भूत-प्रेत आदि की बाधाओं से पीड़ित हैं" इसके स्थान पर कुछ लोगों ने यह अर्थ किया है :—"और जिन्होंने किसी के उकसाने पर अपराध किया है।"

अंन्तःपुरों में नियुक्त हैं। ये धर्म-महामात्र मेरे जीते हुए प्रदेशों में सब जगह धर्मानुरागी लोगों के बीच (यह देखने के लिए) नियुक्त हैं कि वे धर्म का आचरण किस प्रकार करते हैं, धर्म में उनकी कितनी निष्ठा है और दान देने में वे कितना प्रेम रखते हैं। यह धर्मलेख इस उद्देश्य से लिखा गया कि यह बहुत दिनों तक स्थित रहे और मेरी प्रजा इसके अनुसार आचरण करे।

येर्रागुडी का षष्ठ शिलालेख

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहते हैं :—अतीत काल में पहले बराबर हर समय राज्य का काम नहीं होता था और न हर समय प्रतिवेदकों (गुप्तचरों)से समाचार ही सुना जाता था। इसलिए मैंने यह (प्रबन्ध) किया है कि हर समय चाहे मैं खाता होऊं या अन्तःपुर में होऊं या गर्भागार (शयनगृह) में होऊं या टहलता होऊं या सवारी पर होऊं या कूच कर रहा होऊं, सब जगह सब समय प्रतिवेदक (गुप्तचर) प्रजा का हाल मुझे सुनावें। मैं प्रजा का काम सब जगह करता हूँ। यदि मैं स्वयं अपने मुंह से आज्ञा दूं कि (अमुक) दान दिया जाय या (अमुक) काम किया जाय या महामात्रों को कोई आवश्यक आज्ञा दी जाय और यदि उस विषय में कोई विवाद (मतभेद) उनमें उपस्थित हो या मंत्रिपरिषद् उसे अस्वीकार करे तो मैंने आज्ञा दी है कि तुरन्त ही हर घड़ी और हर जगह मुझे सूचना दी जाय। क्योंकि मैं कितना ही परिश्रम करूं मुझे संतोष नहीं होता। सब लोगों का हित करना मैं अपना प्रधान कर्तव्य समझता हूँ। पर सब लोगों का हित परिश्रम और राजकार्य-सम्पादन के बिना नहीं हो सकता। सब लोगों का हित करने से बढ़कर कोई बड़ा कार्य नहीं है। जो कुछ पराक्रम मैं करता हूँ वह इसलिए कि प्राणियों के प्रति मेरा जो ऋण है उससे उऋण हो जाऊं और इस लोक में लोगों को सुखी करूं तथा परलोक में उन्हें स्वर्ग का लाभ कराऊं। यह धर्मलेख इसलिए लिखाया गया कि यह चिरस्थित रहे और मेरे पुत्र और पोते सब लोगों के हित के लिए पराक्रम करें। पर बहुत अधिक पराक्रम के बिना यह कार्य कठिन ह।

येर्रागुडी का सप्तम शिलालेख

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा चाहते हैं कि सब जगह सब संप्रदाय के लोग (एक साथ) निवास करें। क्योंकि सब संप्रदाय संयम और चित्त की शुद्धि चाहते हैं। परन्तु भिन्न भिन्न मनुष्यों की प्रवृत्ति और रुचि भिन्न भिन्न—ऊंची या नीची, अच्छी या बुरी होती है। वे या तो संपूर्ण रूप से या केवल आंशिक रूप से (अपने धर्म का पालन) करेंगे। किन्तु जो बहुत अधिक दान नहीं कर सकता उसमें (कम से कम) संयम, चित्त-शुद्धि, कृतज्ञता और दृढ़ भक्ति का होना नितान्त आवश्यक है।*

येर्रागुडी का अष्टम शिलालेख

अतीत काल में राजा लोग विहार यात्रा के लिए निकलते थे। इन (विहार यात्राओं) में मृगया (शिकार) और इसी तरह के दूसरे आमोद प्रमोद होते थे। परन्तु देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने राज्याभिषेक के दस वर्ष बाद, जबसे संबोधि (अर्थात् ज्ञान प्राप्ति के मार्ग) का अनुसरण किया, (तब से) इन धर्म-यात्राओं (का प्रारंभ हुआ)। इन धर्म-यात्राओं में यह होता है :—श्रमणों और ब्राह्मणों का दर्शन करना और उन्हें दान देना, वृद्धों का दर्शन करना और उन्हें सुवर्ण दान देना, ग्राम-वासियों के पास जाकर धर्म का उपदेश देना और धर्म-संबंधी चर्चा करना। उस समय से अन्य (आमोद प्रमोद) के स्थान पर इसी धर्म-यात्रा में देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा वारंवार आनन्द लेते हैं।

---

* कोई कोई इस अन्तिम वाक्य का अर्थ इस प्रकार करते हैं :—"किन्तु, जो बहुत दान करता है पर जिसमें संयम, चित्त-शुद्धि, कृतज्ञता और दृढ़-भक्ति नहीं है, वह अत्यन्त नीच या निकम्मा है।"

येर्रागुडी का नवम शिलालेख

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहते हैं :—लोग विपत्ति में, पुत्र, तथा कन्या के विवाह में, पुत्र की उत्पत्ति में और इसी तरह के दूसरे (अवसरों पर) अनेक प्रकार के बहुत से ऊंचे और नीचे मंगलाचार करते हैं। ऐसे अवसरों पर स्त्रियां अनेक प्रकार के तुच्छ और निरर्थक मंगलाचार करती हैं। मंगलाचार तो करना ही चाहिए। किन्तु इस प्रकार के मंगलाचार अल्पफल देने वाले होते हैं। परन्तु धर्म का जो मंगलाचार है वह महाफल देने वाला है। इस धर्म के मंगलाचार में दास और सेवकों के प्रति उचित व्यवहार, गुरुओं का आदर, प्राणियों की अहिंसा और श्रमणों तथा ब्राह्मणों को दान तथा इसी प्रकार के दूसरे मंगल कार्य होते हैं। इसलिए पिता, पुत्र, भाई, मित्र, परिचित, पड़ोसी को भी कहना चाहिए :—"यह मंगलाचार अच्छा है, इसे तब तक करना चाहिए जब तक कि अभीष्ट कार्य की सिद्धि न हो। कार्य की सिद्धि हो जाने पर भी मैं इसे फिर करता रहूँगा।" दूसरे मंगलाचार अनिश्चित फल देने वाले हैं। उनसे उद्देश्य की सिद्धि हो या न हो। वे इस लोक में ही फल देने वाले हैं। पर धर्म का मंगलाचार सब काल के लिए है। यदि इस धर्म के मंगलाचार से इस लोक में अभीष्ट उद्देश्य की प्राप्ति न भी हो, तब भी अनन्त पुण्य परलोक में उससे प्राप्त होता है। परन्तु यदि इस लोक में अभीष्ट उद्देश्य की प्राप्ति हो जाय तो धर्म के मंगलाचार से दो लाभ होते हैं अर्थात् इस लोक में अभीष्ट उद्देश्य की सिद्धि तथा परलोक में अनन्त पुण्य की प्राप्ति।

येर्रागुडी का दशम शिलालेख

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा यश वा कीर्ति को बड़ी भारी वस्तु नहीं समझते। (जो कुछ भी यश या कीर्ति वह चाहते हैं सो इसलिए कि) वर्तमान में और भविष्य में मेरी प्रजा धर्म की सेवा करने और धर्म के व्रत को पालन करने में उत्साहित हो। बस केवल इसीलिए देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा यश और

कीर्ति चाहते हैं। देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा जो भी पराक्रम करते हैं सब परलोक के लिए करते हैं जिसमें कि सब लोग दोष से रहित हो जांय। जो अपुण्य है वही दोष है। सब कुछ त्याग करके बड़ा पराक्रम किये बिना, कोई भी मनुष्य, चाहे वह छोटा हो या बड़ा, इस (पुण्य) कार्य को नहीं कर सकता। बड़े आदमी के लिए यह और भी कठिन है।

येर्रागुडी का ग्यारहवां शिलालेख

देवताओं के प्रिय ऐसा कहते हैं—कोई ऐसा दान नहीं है जैसा कि धर्म का दान है, (कोई ऐसी मित्रता नहीं जैसी कि) धर्म के द्वारा मित्रता है, (कोई ऐसा बंटवारा नहीं जैसा कि) धर्म का बंटवारा है, (कोई ऐसा संबन्ध नहीं जैसा कि) धर्म का संबन्ध है। धर्म यह है कि दास और सेवक के साथ उचित व्यवहार किया जाय; माता पिता की सेवा की जाय; मित्र, परिचित, जातिवालों तथा श्रमणों और ब्राह्मणों को दान दिया जाय और प्राणियों की हिंसा न की जाय। इसके लिए पिता, पुत्र, भाई, मित्र, परिचित तथा पड़ोसी को भी यह कहना चाहिए :—"यह अच्छा कार्य है, इसे करना चाहिए।" जो ऐसा करता है, वह इस लोक को भी सिद्ध करता है और परलोक में उस धर्म-दान से अनन्त पुण्य का भागी होता है।

येर्रागुडी का बारहवां शिलालेख

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा विविध दान और पूजा से गृहस्थ और संन्यासी सब सम्प्रदाय वालों का सत्कार करते हैं। किन्तु देवताओं के प्रिय दान या पूजा की इतनी परवाह नहीं करते जितनी इस बात की कि सब संप्रदायों के सार (तत्त्व) की वृद्धि हो। (संप्रदायों के) सार की वृद्धि कई प्रकार से होती

है। पर उसकी जड़ वाक् संयम है अर्थात् लोग केवल अपने ही संप्रदाय का आदर और बिना अवसर दूसरे संप्रदायों की निन्दा न करें या विशेष अवसर पर निन्दा भी हो तो संयम के साथ। हर दशा में दूसरे संप्रदायों का आदर करना ही चाहिए। ऐसा करने से मनुष्य अपने संप्रदाय की विशेष उन्नति और दूसरे संप्रदायों का उपकार करता है। इसके विपरीत जो करता है वह अपने संप्रदाय की (जड़) काटता है और दूसरे संप्रदायों का भी अपकार करता है। क्योंकि जो कोई अपन संप्रदाय की भक्ति में आकर इस विचार से कि मेरे संप्रदाय का गौरव बढ़े, अपने संप्रदाय की प्रशंसा करता है और दूसरे संप्रदायों की निन्दा करता है, वह ऐसा करके वास्तव में अपने संप्रदाय को ही गहरी हानि पहुँचाता है। इसलिए समवाय (परस्पर मेल-जोल से रहना) ही अच्छा है अर्थात् लोग एक दूसरे के धर्म को ध्यान देकर सुनें और उसकी सेवा करें। क्योंकि देवताओं के प्रिय की यह इच्छा है कि सब संप्रदाय वाले बहुश्रुत (भिन्न भिन्न संप्रदायों के सिद्धांतों से परिचित) तथा कल्याणदायक ज्ञान से युक्त हों। इसलिए जो लोग अपने अपने संप्रदायों में ही अनुरक्त हैं उनसे कहना चाहिए कि देवताओं के प्रिय दान या पूजा को इतना महत्व नहीं देते जितना इस बात को कि सब संप्रदायों के सार (तत्त्व) की वृद्धि हो। इस कार्य के निमित्त बहुत से धर्म-महामात्र, स्त्री-महामात्र, व्रजभूमिक तथा अन्य इसी प्रकार के राजकर्मचारी नियुक्त हैं। इसका फल यह है कि अपने संप्रदाय की उन्नति होती है और धर्म का गौरव बढ़ता है।

येर्रागुडी का तेरहवां शिलालेख

राज्याभिषेक के आठ वर्ष बाद देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने कलिंग देश को विजय किया। वहाँ डेढ़ लाख मनुष्य (बन्दी बना कर देश से बाहर) ले जाये गये, एक लाख मनुष्य मारे गये और इससे कई गुणा आदमी (महामारी आदि से) मरे। इसके बाद अब जबकि कलिंग देश मिल गया है, देवताओं के प्रिय द्वारा धर्म का अध्ययन, धर्म का प्रेम और धर्म का अनुशासन तीव्र गति से हुआ है। कलिंग को जीतने पर देवताओं के प्रिय को बड़ा पश्चाताप हुआ। क्योंकि

जिस देश का पहले विजय नहीं हुआ है उस देश का विजय होने पर, लोगों की हत्या, मृत्यु और देश-निष्कासन होता ह। देवताओं के प्रिय को इससे बहुत दुःख और खेद हुआ। देवताओं के प्रिय को इस बात से और भी दुःख हुआ कि वहाँ ब्राह्मण और श्रमण तथा अन्य संप्रदाय के लोग और गृहस्थ रहते हैं, जिनमें ब्राह्मणों की सेवा , माता पिता की सेवा, गुरुओं की सेवा, मित्र, परिचित, सहायक, जाति, दास और सेवकों के प्रति उचित व्यवहार और दृढ़ भक्ति पायी जाती है, ऐसे लोगों का विनाश, वध या प्रियजनों से बलात् वियोग होता है। अथवा जो स्वयं तो सुरक्षित होते हैं, पर जिनके मित्र, परिचित, सहायक और संबन्धी विपत्ति में पड़ जाते हैं, उन्हें भी अत्यन्त स्नेह के कारण बड़ी पीड़ा होती है। यह विपत्ति सब के हिस्से में पड़ती है और इससे देवताओं के प्रिय को विशेष दुःख हुआ। यवनों के देश को छोड़कर कोई ऐसा देश नहीं जहाँ ये संप्रदाय न हों और उनमें ब्राह्मण और श्रमण न हों। कोई ऐसा जनपद नही जहाँ मनुष्य एक न एक संप्रदाय को न मानते हों। इसलिए कलिंग देश के विजय मे उस समय जितने आदमी मारे गये, मरे या हर लिये गये उनके सौवें या हज़ारवें हिस्से का नाश भी अब देवताओं के प्रिय को बड़े दुःख का कारण होगा। अब तो कोई देवताओं के प्रिय का अपकार भी करे तो वे उसे, यदि वह क्षमा के योग्य है तो, क्षमा कर देंगे। देवताओं के प्रिय के जीते हुए प्रदेश में जितने वनवासी लोग हैं उनको भी वे सन्तुष्ट रखते हैं और उन्हें धर्म में लाने का यत्न करते हैं। क्योंकि (यदि वे ऐसा न करें तो) उन्हें पश्चात्ताप होता है। (यह) देवताओं के प्रिय का प्रभाव (महत्व) है। वे उनसे कहते हैं कि वे (बुरे मार्ग पर चलने से) लज्जित हों, जिसमें कि मृत्यु-दण्ड से बचे रहें। देवताओं के प्रिय चाहते हैं कि सब प्राणियों के साथ अहिंसा, संयम, समानता और मृदुता का व्यवहार किया जाय। धर्म विजय को ही देवताओं के प्रिय सबसे मुख्य विजय मानते हैं। यह धर्म-विजय देवताओं के प्रिय ने यहाँ (अपने राज्य में) तथा छः सौ योजन दूर उन सीमावर्ती राज्यों में प्राप्त की है, जहाँ अन्तियोक नामक यवन राजा राज्य करता है और उस अन्तियोक के परे चार राजा अर्थात् तुरमय, अन्तिकिनि, मक और अलिकसुदर नामक राजा राज्य करते हैं (और) अपने राज्य के नीचे (दक्षिण में) चोड़, पांड्य, तथा ताम्रपर्णी (लंका) तक (धर्म विजय प्राप्त की है)। इसी प्रकार यहाँ राजा के राज्य में, यवनों में, काम्बोजों में, नाभकों में, नाभपंक्तियों में, भोजों में, पितिनिकों में, आंध्रों में

और पुलिन्दों में सब जगह लोग देवताओं के प्रिय के धर्मानुशासन का अनुसरण करते हैं। जहाँ जहाँ देवताओं के प्रिय के दूत नहीं पहुंच सकते वहाँ वहाँ भी लोग देवताओं के प्रिय का धर्माचरण, धर्मविधान और धर्मानुशासन सुनकर धर्म का आचरण करते हैं और करेंगे। इस प्रकार सर्वत्र जो विजय हुई ह—बार-बार विजय हुई है—वह वास्तव में आनन्द की देनेवाली है। धर्म की विजय में (अपार) आनन्द मिला है। पर यह आनन्द तुच्छ वस्तु है। देवताओं के प्रिय पारलौकिक कल्याण को ही बड़ी भारी (आनन्द की) वस्तु समझते हैं। इसलिए यह धर्मलेख लिखा गया कि मेरे पुत्र और पौत्र नया (देश) विजय करना अपना कर्त्तव्य न समझें। यदि वे कभी नया देश विजय करें भी तो क्षमा और दया से काम लेना चाहिए और धर्म-विजय को ही असली विजय मानना चाहिए। इससे यह लोक और परलोक दोनों बनते हैं। धर्म का प्रेम ही उनका (सबसे मुख्य) प्रेम हो, क्योंकि उससे यह लोक और परलोक (दोनों सिद्ध होते हैं)।

येर्रागुडी का चौदहवां शिलालेख

यह धर्मलेख देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने लिखवाया है। (यह लेख) कहीं संक्षेप में, कहीं मध्यम रूप में और कहीं विस्तृत रूप में है। क्योंकि सब जगह के लिए सब बात लागू नहीं होती[१]। मेरा राज्य बहुत विस्तृत है, इसलिए बहुत से (लेख) लिखवाये गये हैं और बहुत से लगातार लिखवाये जायेंगे। कहीं कहीं विषय की रोचकता के कारण एक ही बात बार-बार कही गयी है, जिसमें कि लोग उसके अनुसार आचरण करें। इन लेखों में जो कुछ अपूर्ण लिखा गया हो उसका कारण देश-भेद, संक्षिप्तलेख या लिखने वाले का अपराध समझना चाहिए।

१. कोई कोई इस वाक्य का अर्थ इस प्रकार करते हैं :—"सब जगह सब बातें या सब लेख नहीं लिखे गये हैं।"

धौली और जौगढ़ में चट्टान पर खुदे हुए चतुर्दश शिलालेख

प्रथम शिलालेख

यह धर्मलेख देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने खेपिंगल नामक पर्वत पर लिखवाया है। यहाँ (मेरे राज्य में) कोई जीव मार कर होम न किया जाय और समाज (मेला, उत्सव या गोष्ठी जिसमें हिंसा आदि होती हो) न किया जाय। क्योंकि देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा (ऐसे) समाज में बहुत से दोष देखते हैं। परन्तु एक प्रकार के ऐसे समाज (मेले, उत्सव) हैं जिन्हें देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा अच्छा समझते हैं। पहले देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा की पाकशाला में प्रतिदिन कई हज़ार जीव सूप (शोरबा) बनाने के लिए मारे जाते थे। पर अब जबकि यह धर्मलेख लिखा जा रहा है, केवल तीन ही जीव (प्रतिदिन) मारे जाते हैं, दो मोर और एक मृग। पर मृग का मारा जाना नियत नहीं है। भविष्य में यह तीनों प्राणी भी नहीं मारे जायेंगे।

द्वितीय शिलालेख
(धौली और जौगढ़)

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा के जीते हुए प्रदेश में सब जगह तथा सीमावर्त्ती राज्य जैसे चोड़, पांड्य, सत्यपुत्र, केरलपुत्र, (ताम्रपर्णी) में तथा अन्तियोक नामक यवन राजा और जो उस अन्तियोक (सीरिया के राजा) के पड़ोसी सामन्त राजा हैं, उन सबके देशों में देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने दो प्रकार की चिकित्सा का प्रबन्ध किया है—एक मनुष्यों की चिकित्सा के लिए और दूसरा पशुओं की चिकित्सा के लिए। औषधियां भी मनुष्यों और पशुओं के लिए जहाँ जहाँ नहीं थीं वहाँ वहाँ लायी और रोपी गयी हैं। इसी तरह मूल और फल भी जहाँ जहाँ नहीं थे वहाँ वहाँ सब जगह लाये औग रोपे गये हैं। मार्गों में मनुष्यों और पशुओं के आराम के लिए वृक्ष लगाये गये और कुएँ खुदवाये गये हैं।

तृतीय शिलालेख
(धौली और जौगढ़)

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहते हैं :—राज्याभिषेक के बारह वर्ष बाद मैंने यह आज्ञा दी है कि मेरे राज्य में सब जगह युक्त, रज्जुक और प्रादेशिक नामक राजकर्मचारी पांच पांच वर्ष पर इसी काम के लिए अर्थात् धर्म की शिक्षा देने के लिए तथा और और कामों के लिए यह प्रचार करते हुए दौरा करें कि "माता पिता की सेवा करना अच्छा है; मित्र, परिचित, स्वजाति-बान्धव तथा ब्राह्मण और श्रमण को दान देना अच्छा है; जीव-हिंसा न करना अच्छा है; थोड़ा व्यय और थोड़ा संचय करना अच्छा है।" (अमात्यों की) परिषद् भी युक्त नामक कर्मचारियों को आज्ञा देगी कि वे इन नियमों के वास्तविक भाव और अक्षर के अनुसार इनका पालन करें।

चतुर्थ शिलालेख
(धौली और जौगढ़)

अतीत काल में—कई सौ वर्षों से—प्राणियों का वध, जीवों की हिंसा, बन्धुओं का अनादर तथा श्रमणों और ब्राह्मणों का अनादर बढ़ता ही गया। पर आज देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा के धर्माचरण से भेरी (युद्ध के नगाड़े) का शब्द धर्म की भेरी के शब्द में बदल गया है। देव-विमान, हाथी, (नरक-सूचक) अग्नि की ज्वाला और अन्य दिव्य दृश्यों के प्रदर्शनों द्वारा, जैसा पहले कई सौ वर्षों से नहीं हुआ था वैसा, आज देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा के धर्मानुशासन से प्राणियों की अहिंसा, जीवों की रक्षा, बन्धुओं का आदर, श्रमणों और ब्राह्मणों का आदर, माता पिता की सेवा तथा बूढ़ों की सेवा बढ़ गयी है। यह तथा अन्य प्रकार के धर्माचरण बढ़े हैं। इस धर्माचरण को देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा और भी बढ़ायेंगे। देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा के पुत्र, नाती (पोते), परनाती (परपोते) इस धर्माचरण को कल्प के अन्त तक बढ़ाते रहेंगे और धर्म तथा शील

का पालन करते हुए धर्म के अनुशासन का प्रचार करेंगे। क्योंकि धर्म का अनुशासन श्रेष्ठ कार्य है। जो शीलवान् नहीं है वह धर्म का आचरण भी नहीं कर सकता। इसलिए इस (धर्माचरण) की वृद्धि करना तथा इसकी हानि न होने देना अच्छा है। लोग इस बात की वृद्धि में लगें और इसकी हानि न होने दें इसी उद्देश्य से यह लिखा गया है। राज्याभिषेक के बारह वर्ष बाद देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने यह लिखवाया।

पंचम शिलालेख
(धौली और जौगढ़)

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहते हैं—अच्छा काम करना कठिन है। जो अच्छा काम करने में लग जाता है वह कठिन काम करता है। पर मैंने बहुत से अच्छे काम किये हैं। इसलिए यदि मेरे पुत्र, नाती पोते और उनके बाद जो संतानें होंगी वे सब कल्प (के अन्त) तक वैसा अनुसरण करेंगे तो पुण्य करेंगे, किन्तु जो इस (कर्तव्य) का थोड़ा सा भी त्याग करेगा वह पाप करेगा। क्योंकि पाप करना आसान है। पूर्वकाल में धर्म-महामात्र नामक राजकर्मचारी नहीं होते थे। पर मैंने अपने राज्याभिषेक के तेरह वर्ष बाद धर्म-महामात्र नियुक्त किये हैं। ये धर्म-महामात्र सब संप्रदायों के बीच धर्मरत यवन, काम्बोज, गान्धार, राष्ट्रिक, पितिनिक तथा पश्चिमी सीमा (पर रहने वाली जातियों) के बीच धर्म की स्थापना और वृद्धि के लिए तथा उनके हित और सुख के लिए नियुक्त हैं। वे स्वामी और सेवकों, ब्राह्मणों और धनवानों, अनाथों और वृद्धों के बीच, धर्म में अनुरक्त जनों के हित और सुख के लिए तथा सांसारिक लोभ और लालसा की बेड़ी से उनको मुक्त करने के लिए नियुक्त हैं। वे (अन्यायपूर्ण) वध और बन्धन को रोकने के लिए, बेड़ी से जकड़े हुओं को बेड़ी से मुक्त करने के लिए, और जो टोना, भूत प्रेत आदि की बाधाओं से पीड़ित हैं उनकी रक्षा के लिए तथा (उन लोगों का ध्यान रखने के लिए) नियुक्त हैं जो बड़े परिवार वाले हैं वृद्ध हैं। वे पाटलिपुत्र में और बाहर के नगरों में सब जगह हमारे भाइयों, तथा बहिनों तथा दूसरे

रिश्तेदारों के अन्तःपुरों में नियुक्त हैं। ये धर्म-महामात्र समस्त पृथ्वी में धर्मानुरागी लोगों के बीच (यह देखने के लिए) नियुक्त हैं कि वे धर्म का आचरण किस प्रकार करते हैं, धर्म में उनकी कितनी निष्ठा है और दान देने में वे कितनी रुचि रखते हैं। यह धर्म-लेख इस उद्देश्य से लिखा गया कि यह बहुत दिनों तक स्थित रहे और मेरी प्रजा इसके अनुसार आचरण करे।

षष्ठ शिलालेख
(धौली और जौगढ़)

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहते हैं:—अतीत काल में पहले बराबर हर समय राज्य का काम नहीं होता था और न हर समय प्रतिवेदकों (गुप्तचरों) मे समाचार ही सुना जाता था। इसलिए मैंने यह (प्रबन्ध) किया है कि हर समय चाहे मैं खाता होऊं या अन्तःपुर में होऊं या गर्भागार (शयनगृह) में होऊं या टहलता होऊं या सवारी पर होऊं या कूच कर रहा होऊं, सब जगह प्रतिवेदक (गुप्तचर लोग) प्रजा का हाल मुझे सुनावें। मै प्रजा का काम सब जगह करता हूँ। यदि मैं स्वयं अपने मुख से आज्ञा दूं (कि अमुक) दान दिया जाय या (अमुक) काम किया जाय या महामात्रों को कोई आवश्यक भार सौंपा जाय और उस विषय में कोई विवाद (मतभेद) उनमें उपस्थित हो या (मंत्रि-परिषद्) उसे अस्वीकार करे तो मैंने आज्ञा दी है कि तुरन्त ही हर घड़ी और हर जगह मुझे सूचना दी जाय। क्योंकि मैं कितना ही परिश्रम करूं और कितना ही राज-कार्य करूं मुझे संतोष नहीं होता। क्योंकि सब लोगों का हित करना मैं अपना कर्त्तव्य समझता हूँ। पर लोगों का हित परिश्रम और राज्यकार्य-संपादन के बिना नहीं हो सकता। सब लोगों का हित करने से बढ़ कर कोई बड़ा कार्य नहीं है। जो कुछ पराक्रम मैं करता हूँ सो इसलिए कि प्राणियों के प्रति जो मेरा ऋण है उससे उऋण हो जाऊं और इस लोक में लोगों को सुखी करूं तथा परलोक में उन्हें स्वर्ग का लाभ कराऊं। यह धर्मलेख इसलिए लिखाया गया कि यह चिरकाल तक स्थित रहे और मेरे पुत्र तथा नाती पोते सब लोगों

के हित के लिए पराक्रम करें। पर बहुत अधिक पराक्रम के बिना यह कार्य कठिन हैं।

सप्तम शिलालेख
(धौली और जौगढ़)

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा चाहते हैं कि सब जगह सब संप्रदाय के के लोग (एक साथ) निवास करें। क्योंकि सब संप्रदाय संयम और चित्त की शुद्धि चाहते हैं। परन्तु भिन्न भिन्न मनुष्यों की प्रकृति तथा रुचि भिन्न भिन्न—ऊंची या नीची, अच्छी या बुरी, होती है। वे या तो संपूर्ण रूप से या केवल आंशिक रूप से अपने धर्म का पालन करेंगे। किन्तु जो बहुत अधिक दान नहीं कर सकता उसमें संयम, चित्तशुद्धि, कृतज्ञता और दृढ़-भक्ति का होना नितान्त आवश्यक है।[1]

अष्टम शिलालेख
(धौली और जौगढ़)

अतीत काल में राजा लोग विहार-यात्रा के लिए निकलते थे। इन यात्राओं में मृगया (शिकार) और इसी तरह के दूसरे आमोद-प्रमोद होते थे। परन्तु देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने राज्याभिषेक के दस वर्ष बाद जब से संबोधि (अर्थात् ज्ञान प्राप्ति के मार्ग) का अनुसरण किया (तब से) धर्मयात्राओं (का प्रारंभ हुआ)। इन धर्म-यात्राओं में यह होता है :—श्रमणों और ब्राह्मणों का

---

१. कोई कोई इस अन्तिम वाक्य का अर्थ इस प्रकार करते हैं :—"किन्तु जो बहुत दान करता है, पर जिसमें संयम, चित्तशुद्धि, कृतज्ञता और दृढ़ भक्ति नहीं है, वह अत्यन्त नीच या निकम्मा है।"

दर्शन करना और उन्हें दान देना, वृद्धों का दर्शन करना और उन्हें स्वर्ण दान देना, ग्रामवासियों के पास जाकर धर्म का उपदेश देना और उनके साथ उचित धर्म-सम्बन्धी चर्चा करना । उस समय से अन्य (आमोद-प्रमोद के) स्थान पर इसी धर्म-यात्रा में देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा बारंबार आनन्द लेते हैं।

नवम शिलालेख
(धौली और जौगढ़)

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहते हैं :—लोग विपत्ति में, पुत्र या कन्या के विवाह में, पुत्र के जन्म में, परदेश जाने के समय और इसी तरह के दूसरे (अवसरों पर) अनेक प्रकार के बहुत से मंगलाचार करते हैं। ऐसे अवसरों पर स्त्रियां अनेक प्रकार के तुच्छ और निरर्थक मंगलाचार करती हैं। मंगलाचार करना ही चाहिए। किन्तु इस प्रकार के मंगलाचार अल्पफल देने वाले होते हैं। पर धर्म का जो मंगलाचार है वह महाफल देने वाला है। इस धर्म के मंगलाचार में दास और सेवकों के प्रति उचित व्यवहार, गुरुओं का आदर, प्राणियों की अहिंसा, श्रमणों और ब्राह्मणों को दान और इसी प्रकार के दूसरे (सत्कार्य) करने पड़ते हैं। इसीलिए पिता या पुत्र या भाई या स्वामी को भी कहना चाहिए—"यह मंगलाचार अच्छा है, इसे तब तक करना चाहिए जब तक कि अभीष्ट कार्य की सिद्धि न हो।" और ऐसा कहा गया है कि "दान देना अच्छा है।" पर कोई ऐसा दान और उपकार नहीं है जैसा कि धर्म का दान और धर्म का उपकार है। इसलिए मित्र, सहायक, जातिबन्धु को अवसर पर कहना चाहिए :—"यह धर्म का दान पुण्य कार्य है। इससे स्वर्ग की प्राप्ति सम्भव है।" और स्वर्ग की प्राप्ति से बढ़कर इष्ट वस्तु क्या है?

दशम शिलालेख

(धौली और जौगढ़)

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा यश व कीर्ति को बड़ी भारी वस्तु नहीं समझते। जो कुछ भी यश या कीर्ति वह चाहते हैं सो इसलिए कि वर्तमान में और भविष्य में (मेरी) प्रजा धर्म की सेवा करने और धर्म के व्रत को पालन करने में उत्साहित हो। बस केवल इसीलिए देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा यश और कीर्ति चाहते हैं। देवताओं के प्रिय जो भी पराक्रम करते हैं सो परलोक के लिए ही करते हैं, जिसमें कि सब दोष से रहित हो जायें। अपुण्य ही (एक मात्र दोष है)। सब कुछ त्याग करके बड़ा पराक्रम किये बिना, कोई भी मनुष्य चाहे वह छोटा हो या बड़ा, इस (पुण्य) कार्य को नहीं कर सकता। बड़े आदमी के लिए तो यह और भी कठिन है।

चौदहवां शिलालेख

(धौली और जौगढ़)

यह धर्मलेख देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने लिखवाये हैं। (यह लेख) कहीं संक्षेप में, कहीं मध्यम रूप में और कहीं विस्तृत रूप में हैं। क्योंकि सब जगह के लिए सब बातें लागू नहीं होतीं[1]। मेरा राज्य बहुत विस्तृत है, इसलिए बहुत से लेख लिखवाये गये हैं और बहुत से लिखवाये जाएंगे। कहीं कहीं विषय की रोचकता के कारण (एक ही बात बार बार) कही गयी है, जिसमें कि लोग उसके अनुसार आचरण करें। इस लेख में जो कुछ अपूर्ण लिखा गया हो (उसका कारण देश-भेद, संक्षिप्त लेख या लिखने वाले का अपराध समझना चाहिये)।

---

१. किसी किसी ने इस वाक्य का अर्थ किया है :—"सब जगह सब बातें या सब लेख नहीं लिखे गये हैं।"

धौली में चट्टान पर खुदा हुआ प्रथम अतिरिक्त शिलालेख

देवताओं के प्रिय की आज्ञा से तोसली नगर में महामात्रों से, जो उस नगर में न्याय-शासन के अध्यक्ष हैं, यह कहना चाहिए :—जो कुछ मैं (उचित) समझता हूँ उसके अनुसार कार्य करने की तथा उसे (भिन्न-भिन्न) उपायों से पूरा करने की चेष्टा करता हूँ। मेरे मत में इस कार्य को पूरा करने का मुख्य उपाय आप लोगों के प्रति मेरी (यह) शिक्षा है : आप लोग इसलिए कई सहस्र प्राणियों के ऊपर रखे गये हैं कि जिससे हम मनुष्यों का स्नेह प्राप्त करें। सब मनुष्य मेरे पुत्र हैं। जिस तरह मैं चाहता हूँ कि मेरे पुत्र सब प्रकार के हित और सुख को प्राप्त करें उसी तरह मैं चाहता हूँ कि सब मनुष्य ऐहिक और पारलौकिक सब तरह के हित और सुख को प्राप्त करें। पर आप लोग इस बात को पूरी तरह से नहीं समझते। कदाचित् एकाध व्यक्ति इस बात को समझते हों, पर वे भी केवल कुछ ही अंशों में न कि पूर्ण अंशों में समझते हैं। यद्यपि आप लोग भली भांति व्यवस्थित हैं, तब भी आप लोग इस बात पर ध्यान देवें। न्याय करने में कभी कभी ऐसा हो जाता है कि कोई व्यक्ति बन्दीगृह में डाल दिया जाय या कठोर व्यवहार उसके साथ हो। उस दशा में बन्दीगृह से छूटने की (आज्ञा) वह अकस्मात् प्राप्त कर ले, परन्तु बहुत से दूसरे (कैदी) बन्दीगृह में पड़े हुए कष्ट पाते रहें। ऐसी दशा में आप लोगों को (अत्यन्त कठोरता और अत्यन्त दया त्याग करके) मध्य पथ (निष्पक्ष न्याय का मार्ग) अवलम्बन करने की चेष्टा करनी चाहिए। पर बहुत सी ऐसी प्रवृत्तियां (दोष) हैं जैसे ईर्ष्या, क्रोध, निष्ठुरता, जल्दबाजी, अभ्यास का अभाव, आलस्य और तन्द्रा, जिनके कारण मनुष्य कार्य में सफल नहीं होता। आप लोगों को चेष्टा करनी चाहिए कि ऐसी प्रवृत्तियां (दोष) आप लोगों में न आवें। इस सब का मूल है क्रोध का त्याग और जल्दबाजी न करना। जो न्याय के काम में आलस्य करेगा उसका उत्थान नहीं होगा। इस तरह चलना चाहिए और आगे बढ़कर प्रयत्न करना चाहिए। जो इस बात को समझेगा वह अवश्य आपसे कहेगा कि "राजा की अमुक आज्ञा है (अतएव उनकी आज्ञा पालन करके) राजा के प्रति जो तुम्हारा ऋण है उससे उऋण हो।" जो इसका पालन करेगा उसको बड़ा फल मिलेगा। पालन न करने से बड़ी विपित्ति होती है। जो इसमें चूकते हैं वे न तो स्वर्ग प्राप्त कर सकते हैं और न राजा को प्रसन्न कर सकते हैं। कोई इस कार्य को बुरी तरह से

करेगा तो मेरा मन कैसे प्रसन्न होगा ? यदि आप इसका पूरी तरह से पालन करेंगे तो मेरे प्रति जो आपका ऋण है उससे आप उऋण हो जायेंगे और स्वर्ग प्राप्त करेंगे। इस लेख को प्रत्येक पुष्य नक्षत्र के दिन सबों को सुनना चाहिए। बीच बीच में उपयुक्त अवसर पर अकेले एक को भी इसे सुनना चाहिए। इस तरह करते हुए आप मेरा आदेश पालन करने की चेष्टा करें। यह लेख इसलिए लिखा गया कि नगर-व्यावहारिक (नगर-शासक) नामक राजकर्मचारी सदा इस बात का प्रयत्न करें कि (नगर-निवासियों को) अकारण बन्धन या अकारण दण्ड न हो। और इसलिए मैं धर्मानुसार पांच पांच वर्ष पर ऐसे (कर्मचारियों को) जो नरम, क्रोध-रहित और दयालु होंगे, यह जानने के लिए भेजा करूंगा कि (नगर-व्यावहारिक लोग) इस बात की ओर समुचित ध्यान देते हैं या नहीं और मेरे आदेश के अनुसार चलते हैं या नहीं। उज्जयिनी से भी कुमार (गवर्नर) इसी कार्य के लिए इसी प्रकार कर्मचारियों को तीन तीन वर्ष पर भेजेंगे, पर तीन वर्ष से अधिक का अन्तर न देंगे। तक्षशिला के लिए भी यही आज्ञा है। जब उक्त महामात्र (कर्मचारी-गण) दौरे पर निकलेंगे तो अपने साधारण कार्यों को करते हुए इस बात का भी पता चलायेंगे कि नगर-व्यावहारिक (नगर-शासक) लोग राजा के आदेश के अनुसार कार्य करते हैं या नहीं।

धौली का द्वितीय अतिरिक्त शिलालेख

देवताओं के प्रिय की आज्ञा से तोसली नगर में कुमार (गवर्नर) को तथा महामात्रों से यह कहना चाहिए:—जो कुछ मैं (उचित) समझता हूँ उसके अनुसार ....पूरा करने की चेष्टा करता हूँ। मेरे मत में इस कार्य को पूरा करने का मुख्य उपाय आप लोगों के प्रति..........जिस तरह मैं चाहता हूँ कि मेरे पुत्र ऐहिक और पारलौकिक सब तरह के हित और सुख प्राप्त करें उसी तरह........जो सीमान्त जातियां नहीं जीती गयीं हैं वे कदाचित् (यह जानना चाहें) कि हम लोगों के प्रति राजा की क्या आज्ञा है तो सीमान्त जातियों के प्रति मैं चाहता हूँ कि वे यह जानें कि देवताओं के प्रिय........वे

मुझ से न डरें, मुझ पर विश्वास करें, मुझ से सुख ही प्राप्त करें, कभी दुःख न पावें। वे यह भी विश्वास रखें कि जहाँ तक क्षमा का व्यवहार हो सकता है वहाँ तक राजा हम लोगों के साथ क्षमा का बर्ताव करेंगे। मेरे निमित्त वे धर्म का अनुसरण करें जिससे कि उनका यह लोक और परलोक दोनों बनें। इस उद्देश्य के लिए मैं आप लोगों को (राज कर्मचारियों को) शिक्षा देता हूँ कि इससे (उनके प्रति जो मेरा ऋण है उससे) मैं उऋण हो जाऊँ और आप लोगों को अनुशासन देता हूँ तथा सूचित करता हूं कि (इस सम्बन्ध में) मेरा यह अटल निश्चय तथा दृढ़ प्रतिज्ञा है। अतएव इस शिक्षा के अनुसार चलते हुए आप लोगों को अपना कर्त्तव्य करना चाहिए और सीमान्त जातियों में ऐसा भरोसा पैदा करना चाहिए कि जिससे वे यह समझें कि "देवताओं के प्रिय राजा हमारे लिए वैसे ही हैं जैसे कि पिता, वे हम पर वैसा ही प्रेम रखते हैं जैसा कि अपने ऊपर और हम लोग राजा के वैसे ही हैं जैसेकि उनके लड़के।" अतएव आप लोगों को शिक्षा देने तथा अपना दृढ़ निश्चय सूचित करने के बाद मैं यह अनुभव करता हूँ कि मेरे इस उद्देश्य का प्रचार देशव्यापी हो जायगा। आप सीमान्त जातियों में मेरे ऊपर विश्वास उत्पन्न करा सकते हैं और इस लोक तथा परलोक में उनके हित और सुख का सम्पादन करा सकते हैं। इस प्रकार करते हुए आप लोग स्वर्ग का लाभ कर सकते हैं और मेरे प्रति आप लोगों का जो ऋण है उससे उऋण हो सकते है। यह लेख इस उद्देश्य से लिखा गया कि महामात्र लोग सीमान्त जातियों में विश्वास पैदा करने के लिए तथा उन्हें धर्म-मार्ग पर चलाने के लिए निरन्तर प्रयत्न करें। इस लेख को प्रति चातुर्मास्य अर्थात् चार चार मास पर पुष्य नक्षत्र के दिन सुनना चाहिए। यदि चाहें तो हर एक को अकेले भी अवसर अवसर पर सुनना चाहिए। ऐसा करते हुए आप लोग (मेरी आज्ञा पालन करने का) प्रयत्न करें।

जौगढ़ में चट्टान पर खुदा हुआ प्रथम अतिरिक्त शिलालेख

देवताओं के प्रिय ऐसा कहते हैं :—समापा में महामात्रों से, जो उस नगर में न्याय-शासन के अध्यक्ष हैं, यह कहना चाहिए कि जो कुछ मैं (उचित) समझता हूँ उसके अनुसार कार्य करने की तथा उसको (भिन्न भिन्न) उपायों से पूरा करने की चेष्टा करता हूँ। मेरे मन में इस कार्य को पूरा करने का मुख्य उपाय आप लोगों को मेरी (यह) शिक्षा है : आप लोग इसलिए कई सहस्र प्राणियों के ऊपर रखे गये हैं कि जिससे हम मनुष्यों का स्नेह प्राप्त करें। सब मनुष्य मेरे पुत्र हैं। जिस तरह मैं चाहता हूँ कि मेरे पुत्र सब प्रकार के हित और सुख को प्राप्त करें, उसी तरह मैं चाहता हूँ सब मनुष्य ऐहिक और पारलौकिक सब तरह के हित और सुख को प्राप्त करें। पर आप लोग इस बात को पूरी तरह से नहीं समझते। कदाचित् एकाध व्यक्ति इस बात को समझते हों, पर वे भी केवल कुछ अंशों में समझते हैं। यद्यपि आप लोग भली भांति व्यवस्थित हैं, तब भी आप लोग इस बात पर ध्यान देवें। प्रायः ऐसा होता है कि कोई व्यक्ति बन्दीगृह में छोड़ दिया जाये या कठोर व्यवहार उसके साथ हो। उस दशा में बन्दीगृह से छूटने की (आज्ञा) वह अकस्मात् प्राप्त कर ले, परन्तु बहुत से दूसरे (कैदी) बन्दीगृह में पड़े हुए कष्ट पाते रहें। ऐसी दशा में आप लोगों को (अत्यन्त कठोरता और अत्यन्त दया त्याग करके) मध्य पथ (निष्पक्ष न्याय का मार्ग) अवलम्बन करने की चेष्टा करनी चाहिए। पर बहुत सी ऐसी प्रवृत्तियाँ (दोष) हैं जैसे ईर्ष्या, क्रोध, निष्ठुरता, जल्दबाज़ी, अभ्यास का अभाव, आलस्य और तन्द्रा जिनके कारण मनुष्य कार्य में सफल नहीं होता। आप लोगों को चेष्टा करनी चाहिए कि ऐसी प्रवृत्तियाँ (दोष) आप लोगों में न आवें। इन सब का मूल है क्रोध का त्याग और जल्दबाजी न करना। जो न्याय के काम में आलस्य करेगा उसका उत्थान नहीं होगा। अतएव (न्याय के काम में) आगे चलना और बढ़ना चाहिए। जो इस बात की ओर ध्यान देगा वह अवश्य आप से कहेगा कि "देवताओं के प्रिय की अमुक आज्ञा है (अतएव उनकी आज्ञा का पालन करके) राजा के प्रति जो तुम्हारा ऋण है उससे उऋण हो।" जो इसका पालन करेगा उसको बड़ा फल मिलेगा। पालन न करने से बड़ी विपत्ति होती है। जो इसमें चूकते हैं वे न तो स्वर्ग प्राप्त कर सकते हैं और न राजा को प्रसन्न कर

सकते हैं। कोई इस कार्य को बुरी तरह से करेगा तो मेरा मन कैसे प्रसन्न होगा? यदि आप इसका पूरी तरह से पालन करेंगे तो मेरे प्रति जो आपका ऋण है उससे आप उऋण हो जायेंगे और स्वर्ग प्राप्त करेंगे। इस लेख को प्रत्येक पुष्य नक्षत्र के दिन सबों को सुनना चाहिए। बीच बीच में उपयुक्त अवसर पर अकेले एक को भी इसे सुनना चाहिए। ·······चेष्टा करें·······यह लेख इसलिए लिखा गया कि महामात्र (नगर-शासक) सदा इस बाद का प्रयत्न करें कि (नगरवासियों को) अकारण बन्धन या अकारण दण्ड न हो।·······मैं पाँच पाँच वर्ष पर ऐसे महामात्र को जो नरम और दयालु होगा·······भेजा करूँगा ·········कुमार (गवर्नर) भी (भेजेंगे) ··· ········तक्षशिला में···· जब राजा के आदेश के अनुसार वे दौरे पर निकलेंगे तो अपने साधारण कार्यों को करते हुए (इस बात का भी पता लगायेंगे कि नगर-व्यावहारिक) राजा के आदेश के अनुसार कार्य करते हैं या नहीं।

जौगढ़ का द्वितीय अतिरिक्त शिलालेख

देवताओं के प्रिय ऐसा कहते हैं:—समापा में महामात्रों से राजा की ओर से यह कहना चाहिए:—जो कुछ मैं (उचित) समझता हूँ उसके अनुसार मैं कार्य करने की तथा उसको (भिन्न भिन्न) उपायों से पूरा करने की चेष्टा करता हूँ। मेरे मत में इस कार्य को पूरा करने का मुख्य उपाय आप लोगों को मेरी (यह) शिक्षा है :—सब मनुष्य मेरे पुत्र हैं। जिस तरह मैं चाहता हूँ कि मेरे पुत्र सब प्रकार के हित और सुख को प्राप्त करें, उसी तरह मैं चाहता हूँ कि सब मनुष्य ऐहिक और पारलौकिक सब तरह के हित और सुख को प्राप्त करें। जो सीमान्त जातियां नहीं जीती गयी हैं वे कदाचित् (यह जानना चाहें) कि हम लोगों के प्रति राजा की क्या आज्ञा है, तो सीमान्त जातियों के प्रति मैं यह चाहता हूँ कि वे यह जानें कि देवताओं के प्रिय की इच्छा है कि वे मुझसे न डरें मुझ पर विश्वास करें, मुझसे सुख की प्राप्ति करें, कभी दुःख न पावें। वे यह भी विश्वास रक्खें कि जहाँ तक क्षमा का व्यवहार हो सकता है वहाँ तक राजा हम

लोगों के साथ क्षमा का व्यवहार करेंगे। मेरे निमित्त वे धर्म का अनुसरण करें जिसमें कि उनका यह लोक और परलोक दोनों बनें। इस उद्देश्य के लिए मैं आप लोगों (राजकर्मचारियों को) शिक्षा देता हूँ कि उससे (उनके प्रति जो मेरा ऋण है उससे) मैं उऋण हो जाऊं और आप लोगों को अनुशासन देता हूँ तथा सूचित करता हूँ कि (इस सम्बन्ध में) मेरा अटल निश्चय तथा दृढ़ प्रतिज्ञा है। अतएव इस शिक्षा के अनुसार चलते हुए आप लोगों को अपना कर्त्तव्य करना चाहिए और सीमान्त जातियों में ऐसा भरोसा पैदा करना चाहिए कि जिससे वे यह समझें कि "देवताओं के प्रिय राजा हमारे लिए वैसे ही हैं जैसे कि पिता, वे हम पर वैसा ही प्रेम रखते हैं जैसा कि अपने ऊपर और हम लोग राजा के वैसे ही हैं जैसे कि उनके लड़के।" अतएव आप लोगों को शिक्षा देने तथा अपना अटल निश्चय और दृढ़ प्रतिज्ञा सूचित करने के बाद मैं यह अनुभव करता हूँ कि मेरे इस उद्देश्य का प्रचार देशव्यापी हो जायेगा। आप सीमान्त जातियों में मेरे ऊपर विश्वास उत्पन्न करा सकते हैं और इस लोक तथा परलोक में उनके हित और सुख का सम्पादन करा सकते हैं। इस प्रकार करते हुए आप लोग स्वर्ग का लाभ कर सकते हैं और मेरे प्रति आप लोगों का जो ऋण है उससे उऋण हो सकते हैं। यह लेख इस उद्देश्य से लिखा गया कि महामात्र लोग सीमान्त जातियों में विश्वास पैदा करने के लिए तथा उन्हें धर्म-मार्ग पर चलाने के लिए निरन्तर प्रयत्न करें। इस लेख को प्रति चातुर्मास्य अर्थात चार चार मास पर पुष्य नक्षत्र के दिन सुनना चाहिए, बीच बीच में भी सुनना चाहिए। जब अवसर हो तब हर एक हो अकेले भी सुनना चाहिए। ऐसा करते हुए आप लोग (मेरी आज्ञा पालन करने का) प्रयत्न करें।

●

स्तम्भों पर खुदे हुए लेख

(प्रथम से लेकर षष्ठ स्तम्भलेख दिल्ली-टोपरा, दिल्ली-मेरठ, इलाहाबाद-कोसम, लौड़िया-अरराज, लौड़िया-नन्दनगढ़ और रामपुरवा के स्तम्भों पर मिलते हैं। सप्तम स्तम्भलेख केवल दिल्ली-टोपरा के स्तम्भ पर ही मिलता है)

दिल्ली-टोपरा के सप्त स्तम्भलेख

प्रथम स्तम्भलेख

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहते हैं:—राज्याभिषेक के २६ वर्ष बाद मैंने यह धर्मलेख लिखवाया। अत्यन्त धर्मानुराग के बिना, विशेष आत्म-परीक्षा के बिना, बड़ी सेवा के बिना, पाप से बड़े भय के बिना और महान् उत्साह के बिना इस लोक में और परलोक में सुख दुर्लभ है। पर मेरी शिक्षा से (लोगों का) धर्म के प्रति आदर और अनुराग दिन पर दिन बढ़ा है तथा आगे और भी बढ़ेगा। मेरे पुरुष (राजकर्मचारी), चाहे वे ऊंचे पद पर हों या नीचे पद पर अथवा मध्यम पद पर, (मेरी शिक्षा के अनुसार) कार्य करते हैं और ऐसा उपाय करते हैं कि चंचल बुद्धि वाले (दुर्विनीत या पापी) लोग भी धर्म का आचरण करने के लिए प्रेरित हों। इसी तरह अन्त-महामात्र (सीमान्त पर के राजकर्मचारी) भी आचरण करते हैं। धर्म के अनुसार पालन करना, धर्म के अनुसार कार्य करना, धर्म के अनुसार सुख देना और धर्म के अनुसार रक्षा करना यही विधि (शासन का सिद्धांत) है।

दिल्ली-टोपरा का द्वितीय स्तम्भलेख

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहते हैं:—धर्म करना अच्छा है। पर धर्म क्या है? धर्म यही है कि पाप से दूर रहे; बहुत से अच्छे काम करे; दया,

दान, सत्य और शौच (पवित्रता) का पालन करे। मैंने कई प्रकार से चक्षु का दान या आध्यात्मिक दृष्टि का दान भी लोगों को दिया है। दोपायों, चौपायों, पक्षियों और जलचर जीवों पर भी मैंने अनेक कृपा की हैं; मैंने उन्हें प्राणदान भी दिया है। और भी बहुत से कल्याण के काम मैंने किये हैं। यह लेख मैंने इसलिए लिखवाया है कि लोग इसके अनुसार आचरण करें और यह चिरस्थायी रहे। जो इसके अनुसार कार्य करेगा वह पुण्य का काम करेगा।

दिल्ली-टोपरा का तृतीय स्तम्भलेख

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहते हैं:—मनुष्य अपने अच्छे ही काम को देखता है (और मन में कहता है कि) "मैंने यह अच्छा काम किया है।" पर वह अपने पाप को नहीं देखता (और मन में नहीं कहता कि) "यह पाप मैंने किया है या यह दोष मुझ में है।" इस प्रकार की आत्म-परीक्षा बड़ी कठिन है। तथापि मनुष्य को यह देखना चाहिए कि क्रूरता, निष्ठुरता, क्रोध, मान, ईर्ष्या यह सब पाप के कारण हैं और उनके सबब से मनुष्य अपना नाश न होने दे। इस बात की ओर विशेष रूप से ध्यान देना चाहिए कि इस (मार्ग) से मुझे इस लोक में सुख मिलेगा और इस (दूसरे मार्ग) से मेरा परलोक भी बनेगा।

दिल्ली-टोपरा का चतुर्थ स्तम्भलेख

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहते हैं:—राज्याभिषेक के २६ वर्ष बाद मैंने यह धर्मलेख लिखवाया। मेरे रज्जुक नाम के कर्मचारी लाखों मनुष्यों के ऊपर नियुक्त हैं। पुरस्कार तथा दण्ड देने का अधिकार मैंने उनके अधीन कर दिया है, जिसमें कि वे निश्चिन्त और निर्भय होकर अपना कर्त्तव्य पालन करें तथा लोगों के हित और सुख का ध्यान रखें और लोगों पर अनुग्रह करें। वे (लोगों

के) सुख और दु:ख का कारण जानने का प्रयत्न करेंगे और धर्मशील पुरुषों के द्वारा लोगों को ऐसा उपदेश देंगे कि जिससे लोग इस लोक में और परलोक में दोनों जगह सुख प्राप्त करें। रज्जुक लोग भी मेरी आज्ञा का पालन करेंगे। मेरे "पुरुष" (नामक कर्मचारी) भी मेरी इच्छा और आज्ञा के अनुसार काम करेंगे। वे (पुरुष) भी कभी कभी ऐसा उपदेश देंगे कि जिससे रज्जुक लोग मुझे प्रसन्न करने का प्रयत्न करें। जिस प्रकार कोई मनुष्य अपने बच्चे को निपुण धाय के हाथ में सौंप कर निश्चिन्त हो जाता है (और सोचता है कि) यह धाय मेरे बच्चे को सुख पहुँचाने की भरपूर चेष्टा करेगी, उसी प्रकार लोगों को हित और सुख पहुँचाने के लिए मैंने रज्जुक नामक कर्मचारी नियुक्त किये हैं। वे निर्भय, निश्चिन्त और शान्तचित्त होकर काम करें, इसलिए मैंने पुरस्कार अथवा दण्ड देने का अधिकार उनके अधीन कर दिया है। मैं चाहता हूँ कि व्यवहार (न्याय के काम) में तथा दण्ड (सजा) देने में पक्षपात नहीं हो। इसलिए आज से मेरी यह आज्ञा है कि कारागार में पड़े हुए जिन मनुष्यों को मृत्यु का दण्ड निश्चित हो चुका है उन्हें तीन दिन की मुहलत दी जाय। इस बीच में (अर्थात् तीन दिन की मुहलत के भीतर) जिन लोगों को मृत्यु का दण्ड मिला है उनके जाति कुटुम्ब वाले उनकी ओर से उनके जीवनदान के लिए (रज्जुकों से) पुनर्विचार की प्रार्थना करेंगे या वे अन्तकाल तक ध्यान करते हुए परलोक के लिए दान देंगे या उपवास करेंगे, क्योंकि मेरी इच्छा है कि कारागार में रहने के समय भी दण्ड पाये हुए लोग परलोक का चिन्तन करें और अनेक प्रकार का धर्माचरण, संयम और दान करने की इच्छा लोगों में बढ़े।

दिल्ली-टोपरा का पंचम स्तम्भलेख

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहते हैं :—राज्याभिषेक के २६ वर्ष बाद मैंने निम्नलिखित प्राणियों का वध करना वर्जित कर दिया है :—सुग्गा, मैना, अरुण, चकोर, हंस, नान्दीमुख, बोलाट, जतुका (चमगीदड़), अंबाकपीलिका (दीमक), दुडि (कछुवी), बिना हड्डी की मछली, वेदवेयक, गंगापुपुटक,

संकुजमत्स्य, कछुआ, साही, पर्णशश (गिल्हरी), स्टमर (बारहसिंगा), सांड, ओकपिण्ड, पलसत (गेंडा), श्वेत कबूतर, गाँव के कबूतर, तथा सब तरह के चौपाये जो न तो किसी प्रकार उपभोग में आते है और न खाये जाते हैं। गाभिन या दूध पिलाती हुई बकरी, भेड़ी या सुअरी को तथा इनके बच्चों को जो ६ महीने तक के हों, न मारना चाहिए। मुर्गे को बधिया न करना चाहिए। जीवित प्राणी सहित भूमी को न जलाना चाहिए। अनर्थ करने के लिए या प्राणियों की हिंसा करने के लिए वन में आग न लगाना चाहिए। एक जीव को मार कर दूसरे जीव को न खिलाना चाहिए। प्रति चार चार महीने की तीन ऋतुओं की तीन पूर्णमासी के दिन, पौष मास की पूर्णमासी के दिन, चतुर्दशी, अमावस्या और प्रतिपदा के दिन तथा प्रत्येक उपवास के दिन, मछली न मारना चाहिए और न बेचना चाहिए। इन सब दिनों में, हाथियों के वन में तथा तालाबों में, कोई भी दूसरे प्रकार के जीव न मारे जाने चाहिए। प्रत्येक पक्ष की अष्टमी, चतुर्दशी, अमावस्या व पूर्णिमा तथा पुष्य और पुनर्वसु नक्षत्र के दिन, तीन चातुर्मासी के दिन तथा त्यौहारों के दिन, बैल को बधिया न करना चाहिए तथा बकरा, भेड़ा, सुअर और इसी तरह के दूसरे प्राणियों को, जो बधिया किये जाते हैं, बधिया न करना चाहिए। पुष्य और पुनर्वसु नक्षत्र के दिन, प्रत्येक चातुर्मास्य की पूर्णिमा के दिन और प्रत्येक चातुर्मास्य के शुक्ल पक्ष में घोड़े और बैल को न दागना चाहिए। राज्याभिषेक के बाद २६ वर्षों के अन्दर मैंने २५ बार कारागार से बन्दियों को मुक्त किया है।

दिल्ली-टोपरा का षष्ठ स्तम्भलेख

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहते हैं :—राज्याभिषेक के बारह वर्ष बाद मैंने धर्मलेख लोगों के हित और सुख के लिए लिखवाये जिसमें कि वे (पाप के मार्ग को) त्याग कर भिन्न भिन्न प्रकार से धर्म की वृद्धि करें। इसी प्रकार मैं लोगों के हित और सुख को लक्ष्य में रखकर यह देखता हूँ कि न केवल मेरे जाति कुटुम्ब के लोग वरन् दूर के लोग और पास के लोग भी किस प्रकार सुखी रह सकते हैं। इसी (उद्देश्य) के अनुसार मैं कार्य भी करता हूँ। इसी प्रकार सब समाजों के

(हित और सुख को) मैं ध्यान में रखता हूँ। मैंने सब पाषण्डों (संप्रदायों) का भी विविध प्रकार से सत्कार किया है। किन्तु अपने आप स्वयं (लोगों के पास) जाना—यह मैं (अपना) मुख्य (कर्त्तव्य) मानता हूँ। राज्याभिषेक के २६ वर्ष बाद मैंने यह धर्मलेख लिखवाया।

दिल्ली-टोपरा का सप्तम स्तम्भलेख

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहते हैं :—अतीत काल में जो राजा हुए उनकी इच्छा थी कि किसी प्रकार लोगों में धर्म की वृद्धि हो। पर लोगों में आशा के अनुकूल धर्म की वृद्धि नहीं हुई।

इसलिए देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहते हैं :—यह विचार मेरे मन में हुआ कि पूर्व समय में राजा लोग यह चाहते थे कि किसी प्रकार लोगों में उचित रूप से धर्म की वृद्धि हो, पर लोगों में यथेष्ठ धर्म की वृद्धि नहीं हुई। तो अब किस प्रकार से लोगों को (धर्म-पालन में) प्रवृत्त किया जाय ? किस प्रकार लोगों में यथोचित धर्म की वृद्धि की जाय ? किस प्रकार धर्म की वृद्धि से मैं उन्हें उन्नत कर सकूं ?

इसलिए देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहते हैं :—यह विचार मेरे मन में हुआ कि लोगों को धर्म-श्रवण कराऊं और धर्म का उपदेश दूं, जिसमें कि लोग उसे सुनकर उसी के अनुसार आचरण करें, उन्नति करें और विशेष रूप से धर्म की वृद्धि करें। इसी उद्देश्य से धर्म-श्रवण कराया गया और विविध प्रकार से धर्म का उपदेश दिया गया, जिसमें कि मेरे "पुरुष" नामक कर्मचारी जो बहुत से लोगों के ऊपर नियुक्त हैं, मेरे उपदेशों का प्रचार और विस्तार करें। रज्जुकों को भी, जो लाखों मनुष्यों के ऊपर नियुक्त हैं, यह आज्ञा दी गयी है कि धर्म-प्रेमी लोगों को इसी प्रकार उपदेश करें।

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहते हैं :—इसी उद्देश्य को लक्ष्य में रखकर मैंने धर्मस्तम्भ बनवाये, धर्ममहामात्र नियुक्त किये और धर्म की घोषणायें निकालीं।

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहते हैं :—सड़कों पर भी मैंने मनुष्यों और पशुओं को छाया देने के लिए बरगद के पेड़ लगवाये, आम के पेड़ों की वाटिकाएं लगवायीं, आठ आठ कोस पर कुएँ खुदवाये, सरायें बनवायीं और जहाँ-तहाँ पशुओं तथा मनुष्यों के उपकार के लिए अनेक पौंसले (आपान) बैठाये। किन्तु यह उपकार कुछ भी नहीं है। पहिले के राजाओं ने और मैंने भी विविध प्रकार के सुखों से लोगों को सुखी किया है। किन्तु मैंने यह (सुख की व्यवस्था) इसलिए की है कि लोग धर्म के अनुसार आचरण करें।

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी ऐसा कहते हैं :—मेरे धर्ममहामात्र भी उन बहुत तरह के उपकार के कार्यों में नियुक्त हैं जिनका सम्बन्ध संन्यासी और गृहस्थ दोनों से है। वे सब संप्रदायों में भी नियुक्त हैं। मैंने उन्हें संघों (बौद्ध भिक्षुओं) में, ब्राह्मणों में, आजीविकों में, निर्ग्रन्थों (जैन साधुओं) में तथा विविध संप्रदायों के बीच नियुक्त किया है। इस प्रकार भिन्न भिन्न महामात्र अपने-अपने कार्यों में लगे हुए हैं, किन्तु धर्ममहामात्र अपने कार्य के अलावा सब संप्रदायों का निरीक्षण भी करते हैं।

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहते हैं :—ये तथा अन्य प्रधान कर्मचारी मेरे तथा मेरी रानियों के दानोत्सर्ग के कार्यों के सम्बन्ध में नियुक्त हैं और यहाँ (पाटलिपुत्र में) तथा प्रांतों में वे मेरे सब अंतःपुर वालों को भिन्न भिन्न रूप से बताते हैं कि कौन कौन से लोग कितने दान के पात्र हैं। वे मेरे पुत्रों और दूसरे राजकुमारों के दानोत्सर्ग कार्य की देखभाल करने के लिए नियुक्त हैं, जिसमें कि धर्म की उन्नति और धर्म का आचरण हो। धर्म की उन्नति और धर्म का आचरण इसी में है कि दया, दान, सत्य, शौच (पवित्रता), मृदुता और साधुता लोगों में बढ़ें।

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहते हैं :—जो कुछ अच्छा काम मैंने किया है उसे लोग स्वीकार करते हैं और उसका अनुसरण करते हैं, जिससे माता-पिता की सेवा, गुरुओं की सेवा, वयोवृद्धों का सत्कार और ब्राह्मणों-श्रमणों के साथ, दीन-दुखियों के साथ तथा दास-नौकरों के साथ उचित व्यवहार, ये सब गुण लोगों में बढ़े हैं और बढ़ेंगे।

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहते हैं :—मनुष्यों में जो यह धर्म की वृद्धि हुई है सो दो प्रकार से हुई है अर्थात् एक धर्म के नियम के द्वारा और दूसरे

विचार-परिवर्तन के द्वारा। इन दोनों में से धर्म के नियम कोई बड़े महत्व की वस्तु नहीं हैं, पर विचार-परिवर्तन बड़े महत्व की बात है। धर्म के नियम ये हैं, जैसा कि मैंने आज्ञा निकाली है कि अमुक-अमुक प्राणी न मारे जांय। और भी बहुत से धर्म के नियम मैंने बनाये हैं। पर विचार-परिवर्तन के द्वारा मनुष्यों में धर्म की वृद्धि हुई है, क्योंकि इससे प्राणियों की अहिंसा और (यज्ञों में) जीवों का अवध (वध न किया जाना) बढ़ा है।

यह लेख इसलिए लिखा गया है कि जब तक सूर्य और चन्द्रमा हैं तब तक मेरे पुत्र और प्रपौत्र (परपोते) इसके अनुसार आचरण करें। क्योंकि इसके अनुसार आचरण करने से यह लोक और परलोक दोनों सुधरेंगे। राज्याभिषेक के २७ वर्ष बाद मैंने यह लेख लिखवाया है।

देवताओं के प्रिय यह कहते हैं :—जहाँ-जहाँ पत्थर के स्तम्भ या पत्थर की शिलाएं हों वहाँ-वहाँ यह धर्मलेख खुदवाये जायें, जिसमें कि चिरस्थित रहें।

दिल्ली-मेरठ के स्तम्भलेख

प्रथम स्तम्भ-लेख

....धर्म के अनुसार पालन करना, धर्म के अनुसार काम करना, धर्म के अनुसार सुख देना ....

दिल्ली-मेरठ का द्वितीय स्तम्भलेख

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहते हैं :—धर्म करना अच्छा है। पर धर्म क्या है ? धर्म यही है कि पाप से दूर रहे; बहुत से अच्छे काम करे; दया दान, सत्य और शौच (पवित्रता) का पालन करे। मैंने कई प्रकार से चक्षु का दान या आध्यात्मिक दृष्टि का दान भी लोगों को दिया है। दोपायों, चौपायों, पक्षियों और जलचर जीवों पर भी मैंने अनेक कृपा की है। मैंने उन्हें प्राणदान भी दिया है। और भी वहुत से कल्याण के काम मैंने किये हैं। यह लेख मैंने इसलिए लिखवाया है (कि लोग इसके अनुसार) आचरण करें और यह चिर-स्थायी रहे। जो इसके अनुसार कार्य करेगा, वह पुण्य का काम करेगा।

दिल्ली-मेरठ का तृतीय स्तम्भलेख

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहते हैं:—मनुष्य अपने अच्छे ही काम को देखता है (और मन में कहता है कि) "मैंने यह अच्छा काम किया है" पर वह अपने पाप को नहीं देखता (और मन में नहीं कहता कि) "यह पाप मैंने किया है या यह दोप मुझ में है।" इस प्रकार की आत्म-परीक्षा बड़ी कठिन है। तथापि मनुष्य को यह देखना चाहिए कि क्रूरता, निष्ठुरता, क्रोध, मान,ईर्ष्या यह सब पाप के कारण हैं और इनके कारण से मनुष्य अपना नाश न होने दे। इस बात की ओर विशेष रूप से ध्यान देना चाहिए कि इस (मार्ग) से मुझे इस लोक में सुख मिलेगा और इस (दूसरे मार्ग) से मेरा परलोक भी बनेगा।

दिल्ली-मेरठ का चतुर्थ स्तम्भलेख

....

.......................(रज्जुक लोग) मुझे प्रसन्न करने का प्रयत्न करें..

..................निश्चित हो जाता है..........................

.........................सुख पहुँचाने की.....................

उसी प्रकार लोगों को हित और सुख पहुँचाने के लिए मैंने रज्जुक नामक कर्मचारी नियुक्त किये हैं। वे निर्भय, निश्चिन्त ....काम करें। इसलिए मैंने..............................रज्जुकों के अधीन कर दिया है। मैं चाहता हूँ कि व्यवहार (न्याय के काम) में तथा दण्ड (सज़ा) देने में पक्षपात नहीं हो। इसलिए (आज से) मेरी यह आज्ञा है कि कारागार में पड़े हुए जिन मनुष्यों को मृत्यु का दण्ड निश्चित हो चुका है उन्हें तीन दिन की मुहलत दी जाय। ....उनकी ओर से उनके जीवन दान के लिए (रज्जुकों से) पुर्नविचार की प्रार्थना करेंगे या वे अन्तकाल तक ध्यान करते हुए परलोक के लिए ....उपवास करेंगे।...............कारागार में रहने के समय भी (दण्ड पाये हुए लोग) परलोक का चिन्तन करें और अनेक प्रकार का धर्माचरण, संयम और दान करने की इच्छा लोगों में बढ़े।

दिल्ली-मेरठ का पंचम स्तम्भलेख

....

....उनके बच्चों को जो ६ महीने तक के हों, न मारना चाहिए। मुर्गे को बधिया न करना चाहिए। जीवित प्राणी सहित भूसी को न जलाना चाहिए। अनर्थ करने के लिए या प्राणियों की हिंसा करने के लिए वन में आग न लगाना चाहिये। एक जीव मार कर दूसरे जीव को न खिलाना चाहिए। प्रति चार चार महीने की तीन ऋतुओं की तीन

पूर्णमासी के दिन, पौष मास की पूर्णमासी के दिन, चतुर्दशी, अमावस्या और प्रतिपदा के दिन तथा प्रत्येक उपवास के दिन, मछली न मारना चाहिए और न बेचना चाहिए। इन सब दिनों में हाथियों के वन में तथा तालाबों में कोई भी दूसरे प्रकार के जीव न मारे जाने चाहिए। प्रत्येक पक्ष की अष्टमी, चतुर्दशी, अमावस्या वा पूर्णिमा तथा पुष्य और पुनर्वसु-नक्षत्र के दिन, तीन चातुर्मासी के दिन तथा त्योहारों के दिन बैल को बधिया न करना चाहिए तथा बकरा, भेड़ा, सूअर और इसी तरह के दूसरे प्राणियों को, जो बधिया किये जाते हैं, बधिया न करना चाहिए। पुष्य और पुनर्वसु नक्षत्र के दिन, प्रत्येक चातुर्मास्य की पूर्णिमा के दिन और प्रत्येक चातुर्मास्य के शुक्ल पक्ष में घोड़े और बैल को न दागना चाहिए। राज्याभिषेक के बाद २६ वर्षों के अन्दर मैंने २५ बार कारागार से बन्दियों को मुक्त किया है।

दिल्ली-मेरठ का षष्ठ स्तम्भलेख

....

....

....अपने आप स्वयं (लोगों के पास) जाना—यह मैं मुख्य कर्त्तव्य मानता हूँ। राज्याभिषेक के २६ वर्ष बाद मैंने यह धर्म लेख लिखवाया।

लौड़िया-अरराज के स्तम्भलेख

प्रथम स्तम्भलेख

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहते हैं:—राज्याभिषेक के २६ वर्ष बाद मैंने यह धर्म-लेख लिखवाया। अत्यन्त धर्मानुराग के बिना, विशेष आत्म-परीक्षा के बिना, बड़ी सेवा के बिना, पाप से बड़े भय के बिना और महान्

उत्साह के बिना इस लोक में और परलोक में सुख दुर्लभ है। पर मेरी शिक्षा से (लोगों का) धर्म के प्रति आदर और अनुराग दिन पर दिन बढ़ा है तथा आगे और भी बढ़ेगा। मेरे पुरुष (राजकर्मचारी) चाहे वे ऊंचे पद पर हों या नीचे पद पर अथवा मध्यम पद पर, (मेरी शिक्षा के अनुसार) कार्य करते हैं और ऐसा उपाय करते हैं कि चंचल बुद्धि वाले (दुर्विनीत या पापी) लोग भी धर्म का आचरण करते हैं। धर्म के अनुसार पालन करना, धर्म के अनुसार कार्य करना, धर्म के अनुसार सुख देना और धर्म के अनुसार रक्षा करना यही विधि (शासन का सिद्धान्त) है।

लौड़िया-अरराज का द्वितीय स्तम्भलेख

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहते हैं :—धर्म करना, अच्छा है। पर धर्म क्या है ? धर्म यही है कि पाप से दूर रहे; बहुत से अच्छे काम करे; दया, दान, सत्य और शौच (पवित्रता) का पालन करे। मैंने कई प्रकार से चक्षु का दान या आध्यात्मिक दृष्टि का दान भी लोगों को दिया है। दोपायों, चौपायों, पक्षियों और जलचर-जीवों पर भी मैंने अनेक कृपा की है, मैंने उन्हें प्राणदान भी दिया है। और भी बहुत से कल्याण के काम मैंने किये हैं। यह लेख मैंने इसलिए लिखवाया है कि लोग इसके अनुसार आचरण करें और यह चिरस्थायी रहे। जो इसके अनुसार कार्य करेगा वह पुण्य का काम करेगा।

लौड़िया-अरराज का तृतीय स्तम्भलेख

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहते हैं:—मनुष्य अपने अच्छे ही काम को देखता है (और मन में कहता है कि) "मैंने यह अच्छा काम किया है।" पर वह अपने पाप को नहीं देखता (और मन में नहीं कहता कि) "यह पाप मैंने

किया है या यह दोष मुझमें है।" इस प्रकार की आत्म-परीक्षा बड़ी कठिन है। तथापि मनुष्य को यह देखना चाहिए कि क्रूरता, निष्ठुरता, क्रोध, मान, ईर्ष्या, यह सब पाप के कारण हैं और इनके सबब से मनुष्य अपना नाश न होने दे। इस बात की ओर विशेष ध्यान देना चाहिए कि इस (मार्ग) से मुझे इस लोक में सुख मिलेगा और इस (दूसरे मार्ग) से मेरा परलोक भी बनेगा।

लौड़िया-अरराज का चतुर्थ स्तम्भलेख

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहते हैं :–राज्याभिषेक के २६ वर्ष बाद मैंने यह धर्म-लेख लिखवाया। मेरे रज्जक नाम के कर्मचारी लाखों मनुष्यों के ऊपर नियुक्त हैं। पुरस्कार तथा दण्ड देने का अधिकार मैंने उनके अधीन कर दिया है, जिसमें कि वे निश्चिन्त और निर्भय होकर अपना कर्त्तव्य पालन करें तथा लोगों के हित और सुख का ध्यान रखें और लोगों पर अनुग्रह करें। वे (लोगों के) सुख और दुःख का कारण जानने का प्रयत्न करेंगे और धर्मशील पुरुषों के द्वारा लोगों को ऐसा उपदेश देंगे कि जिससे वे लोग इस लोक में और परलोक में दोनों जगह सुख प्राप्त करें। रज्जुक लोग भी मेरी आज्ञा का पालन करेंगे। मेरे "पुरुष" (नामक कर्मचारी) भी मेरी इच्छा और आज्ञा के अनुसार काम करेंगे। वे (पुरुष) भी कभी कभी ऐसा उपदेश देंगे कि जिससे रज्जुक लोग मुझे प्रसन्न करने का प्रयत्न करें। जिस प्रकार कोई मनुष्य अपने बच्चे को निपुण धाय के हाथ सौंपकर निश्चिन्त हो जाता है (और सोचता है कि) यह धाय मेरे बच्चे को सुख पहुँचाने की भरपूर चेष्टा करेगी, उसी प्रकार लोगों के हित और सुख पहुँचाने के लिए मैंने रज्जुक नामक कर्मचारी नियुक्त किये हैं। वे निर्भय, निश्चिन्त और शान्तचित्त होकर काम करें, इसलिए मैंने पुरस्कार अथवा दण्ड देने का अधिकार उनके अधीन कर दिया है। मैं चाहता हूँ कि व्यवहार (न्याय के काम) में तथा दण्ड (सज़ा) देने में पक्षपात नहीं हो। इसलिए आज से मेरी यह आज्ञा है कि कारागार में पड़े हुए जिन मनुष्यों को मृत्यु का दण्ड निश्चित हो चुका है उन्हें तीन दिन की मुहलत दी जाय। (इस बीच में अर्थात् तीन दिन की मुहलत के भीतर) जिन लोगों को मृत्यु का

दण्ड मिला है उनके जाति कुटुम्ब वाले उनकी ओर से उनके जीवन दान के लिए (रज्जुकों से) पुर्निचार की प्रार्थना करेंगे या वे अन्तकाल तक ध्यान करते हुए परलोक के लिए दान देंगे या उपवास करेंगे। क्योंकि मेरी इच्छा है कि कारागार में रहने के समय भी दण्ड पाये हुए लोग परलोक का चिन्तन करें और अनेक प्रकार का धर्माचरण, संयम और दान करने की इच्छा लोगों में बढ़े।

लौड़िया-अरराज का पंचम स्तम्भलेख

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहते हैं:—राज्याभिषेक के २६ वर्ष बाद मैंने निम्नलिखित प्राणियों का वध करना वर्जित कर दिया है:—सुग्गा, मैना, अरुण, चकोर, हंस, नान्दीमुख, गेलाट, जतुका (चमगीदड़), अंबाकपीलिका (दीमक), दुड़ि (कछुवी), बिना हड्डी की मछली, वेदवेयक, गंगापुपुटक, संकुज-मत्स्य, कछुआ, साही, पर्णशश (गिलहरी), स्टमर (बारहसिंगा) साँड, ओकपिण्ड, पलसत (गेंडा), श्वेत कबूतर, गाँव के कबूतर तथा सब तरह के वे चौपाये जो न तो किसी प्रकार के उपयोग में आते हैं और न खाये जाते हैं। गाभिन या दूध पिलाती हुई बकरी, भेड़ी या सुअरी को तथा इनके बच्चों को, जो ६ महीने तक के हों, न मारना चाहिए। मुर्गे को वधिया न करना चाहिए। जीवित प्राणी सहित भूसी को न जलाना चाहिए। अनर्थ करने के लिए या प्राणियों की हिंसा करने के लिए वन में आग न लगाना चाहिए। एक जीव को मार कर दूसरे जीव को न खिलाना चाहिए। प्रति चार चार महीने की तीन ऋतुओं की तीन पूर्णमासी के दिन, पौष मास की पूर्णमासी के दिन, चतुर्दशी, अमावस्या और प्रतिपदा के दिन तथा प्रत्येक उपवास के दिन, मछली न मारना चाहिए और न बेचना चाहिए। इन सब दिनों में हाथियों के वन में तथा तालाबों में कोई भी दूसरे प्रकार के जीव न मारे जाने चाहिए। प्रत्येक पक्ष की अष्टमी, चतुर्दशी, अमावस्या या पूर्णिमा तथा पुष्य और पुनर्वसु नक्षत्र के दिन, तीन चातुर्मासी के दिन तथा त्यौहारों के दिन बैल को वधिया न करना चाहिए तथा बकरा, भेड़ा, सुअर और इसी तरह के दूसरे प्राणियों को, जो वधिया किये जाते है, वधिया न करना चाहिये। पुष्य और पुनर्बसु

नक्षत्र के दिन, प्रत्येक चातुर्मास्य की पूर्णिमा के दिन और प्रत्येक चातुर्मास्य के शुक्ल पक्ष में घोड़े और बैल को न दागना चाहिए। राज्याभिषेक के बाद २६ वर्ष के अन्दर मैंने २५ बार कारागार से बन्दियों को मुक्त किया है।

लौड़िया-अरराज का षष्ठ स्तम्भलेख

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहते हैं :—राज्याभिषेक के बारह वर्ष बाद मैंने धर्मलेख लोगों के हित और सुख के लिए लिखवाये, जिसमें कि वे (पाप के मार्ग को) त्याग कर भिन्न भिन्न प्रकार से धर्म की वृद्धि करें। इसी प्रकार में लोगों के हित और सुख को लक्ष्य में रखकर यह देखता हूँ कि न केवल मेरे जाति कुटुम्ब के लोग वरन् दूर के लोग और पास के लोग भी किस प्रकार सुखी रह सकते हैं। इसी (उद्देश्य) के अनुसार में कार्य भी करता हूँ। इसी प्रकार सब समाजों के (हित और सुख को) में ध्यान में रखता हूँ। मैंने सब पाषण्डों (सम्प्रदायों) का भी विविध प्रकार से सत्कार किया है। किन्तु अपने आप स्वयं (लोगों के पास) जाना—यह में (अपना) मुख्य (कर्त्तव्य) मानता हूँ। राज्याभिषेक के २६ वर्ष बाद मैंने यह धर्म-लेख लिखवाया।

लौड़िया-नन्दनगढ़ के स्तम्भलेख

प्रथम स्तम्भलेख

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहते हैं :—राज्याभिषेक के २६ वर्ष बाद मैंने यह धर्म-लेख लिखवाया। अत्यन्त धर्मानुराग के बिना, विशेष आत्म-परीक्षा के बिना, बड़ी सेवा के बिना, पाप से बड़े भय के बिना और महान् उत्साह के बिना इस लोक में और परलोक में सुख दुर्लभ है। पर मेरी शिक्षा से (लोगों का) धर्म के प्रति आदर और अनुराग दिन पर दिन बढ़ा है तथा आगे और भी बढ़ेगा

मेरे पुरुष (राजकर्मचारी) चाहे वे ऊँचे पद पर हों या नीचे पद पर अथवा मध्यम पद पर (मेरी शिक्षा के अनुसार) कार्य करते हैं और ऐसा उपाय करते हैं कि चंचल-बुद्धि वाले (दुर्विनीत या पापी) लोग भी धर्म का आचरण करने के लिए प्रेरित हों। इसी तरह अन्त-महामात्र (सीमान्त पर के राजकर्मचारी) भी आचरण करते हैं। धर्म के अनुसार पालन करना, धर्म के अनुसार कार्य करना, धर्म के अनुसार सुख देना और धर्म के अनुसार रक्षा करना यही विधि (शासन का सिद्धान्त) है।

लौड़िया-नन्दनगढ़ का द्वितीय स्तम्भलेख

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहते हैं :— धर्म करना अच्छा है। पर धर्म क्या है? धर्म यही है कि पाप से दूर रहे; बहुत से अच्छे काम करें; दया, दान, सत्य और शौच (पवित्रता) का पालन करें। मैंने कई प्रकार से चक्षु का दान या आध्यात्मिक दृष्टि का दान भी लोगों को दिया है। दोपायों, चौपायों, पक्षियों और जलचर-जीवों पर भी मैंने अनेक कृपा की है, मैंने उन्हें प्राण-दान भी दिया है। और भी बहुत से कल्याण के काम मैंने किये हैं। यह लेख मैंने इसलिए लिखवाया है कि लोग इसके अनुसार आचरण करें और यह चिरस्थायी रहे। जो इसके अनुसार कार्य करेगा, वह पुण्य का काम करेगा।

लौड़िया-नन्दनगढ़ का तृतीय स्तम्भलेख

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहते हैं:—मनुष्य अपने अच्छे ही कामों को देखता है (और मन में कहता है कि) "मैंने यह अच्छा काम किया है।" पर वह अपने पाप को नहीं देखता (और मन में नहीं कहता कि) "यह पाप मैंने किया है या यह दोष मुझमें है।" इस प्रकार की आत्म-परीक्षा बड़ी कठिन है। तथापि

मनुष्य को यह देखना चाहिए कि क्रूरता, निष्ठुरता, क्रोध, मान, ईर्ष्या यह सब पाप के कारण हैं और इनके सबब से मनुष्य अपना नाश न होने दें। इस बात की ओर विशेष ध्यान देना चाहिए कि इस (मार्ग) से मुझे इस लोक में सुख मिलेगा और इस (दूसरे मार्ग) से मेरा परलोक भी बनेगा।

लौड़िया-नन्दनगढ़ का चतुर्थ स्तम्भलेख

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहते है :—राज्याभिषेक के २६ वर्ष बाद मैंने यह धर्म-लेख लिखवाया। मेरे रज्जुक नाम के कर्मचारी लाखों मनष्यों के ऊपर नियुक्त हैं। पुरस्कार तथा दण्ड देने का अधिकार मैंने उनके अधीन कर दिया है, जिससे कि वे निश्चिन्त और निर्भय होकर अपना कर्त्तव्य पालन करें तथा लोगों के हित और सुख का ध्यान रखें और लोगों पर अनुग्रह करें। वे (लोगों) के सुख और दुःख का कारण जानने का प्रयत्न करेंगे और धर्म-शील पुरुषों के द्वारा लोगों को ऐसा उपदेश देंगे कि जिससे वे लोग इस लोक में और परलोक में दोनों जगह सुख प्राप्त करें। रज्जुक लोग भी मेरी आज्ञा का पालन करेंगे। मेरे "पुरुष" (नामक कर्मचारी) भी मेरी इच्छा और आज्ञा के अनुसार काम करेंगे। वे (पुरुष) भी कभी कभी ऐसा उपदेश देंगे कि जिससे रज्जुक लोग मुझे प्रसन्न करने का प्रयत्न करें। जिस प्रकार कोई मनुष्य, अपने बच्चे को निपुण धाय के हाथ सौंप कर निश्चिन्त हो जाता है (और सोचता है कि) यह धाय मेरे बच्चे को सुख पहुँचाने की भरपूर चेष्टा करेगी। उसी प्रकार लोगों के हित और सुख पहुँचाने के लिए मैंने रज्जुक नामक कर्मचारी नियुक्त किये हैं। वे निर्भय, निश्चिन्त और शान्तचित्त होकर काम करें इसलिए मैंने पुरस्कार अथवा दण्ड देने का अधिकार उनके अधीन कर दिया है। मैं चाहता हूँ कि व्यवहार (न्याय के काम) में तथा दण्ड (सज़ा) देने में पक्षपात नहीं हो। इसलिए आज से मेरी यह आज्ञा है कि कारागार में पड़े हुए जिन मनुष्यों को मृत्यु का दण्ड निश्चित हो चुका है, उन्हें तीन दिन की मुहलत दी जाय। (इस बीच में अर्थात् तीन दिन की मुहलत के भीतर) जिन लोगों को मृत्यु का दण्ड मिला है उनके जाति-कुटुम्ब वाले उनकी ओर से उनके

जीवन दान के लिए (रज्जुकों से) पुनर्विचार की प्रार्थना करेंगे या वे अन्त काल तक ध्यान करते हुए परलोक के लिए दान देंगे या उपवास करेंगे। क्योंकि मेरी इच्छा है कि कारागार में रहने के समय में भी दण्ड पाये हुए लोग परलोक का चिन्तन करें और अनेक प्रकार का धर्माचरण, संयम और दान करने की इच्छा लोगों में बढ़े।

लौड़िया नन्दनगढ़ का पंचम स्तम्भलेख

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहते हैं :—राज्याभिषेक के २६ वर्ष बाद मैंने निम्नलिखित प्राणियों का वध करना वर्जित कर दिया है :—सुग्गा, मैना, अरुण, चकोर, हंस, नान्दीमुख, गेलाट, जतुका (चमगीदड़), अंबाकपीलिका (दीमक), दुड़ि (कछुवी), बिना हड्डी की मछली, वेदवेयक, गंगापुपुटक, संकुज-मत्स्य, कछुआ, साही, पर्णशश, (गिलहरी), स्टमर (बारहसिंगा), साँड, ओकपिण्ड, पलसत (गेंडा), श्वेत कबूतर, गाँव के कबूतर तथा सब तरह के चौपाये जो न तो किसी प्रकार के उपयोग में आते है और न खाये जाते हैं। गाभिन या दूध पिलाती हुई बकरी, भेड़ी या सुअरी को तथा इनके बच्चों को, जो ६ महीने तक के हों, न मारना चाहिए। मुर्गे को बधिया न करना चाहिए। जीवित प्राणियों सहित भूसी को न जलाना चाहिए। अनर्थ करने के लिए या प्राणियों की हिंसा करने के लिए वन में आग न लगाना चाहिए। एक जीव को मारकर दूसरे जीव को न खिलाना चाहिए। प्रति चार चार महीने की तीन ऋतुओं की तीन पूर्ण-मासी के दिन, पौषमास की पूर्णमासी के दिन, चतुर्दशी, अमावस्या और प्रति-पदा के दिन तथा प्रत्येक उपवास के दिन, मछली न मारना चाहिए और न बेचना चाहिए। इन सब दिनों में हाथियों के वन में तथा तालाबों में कोई भी दूसरे प्रकार के जीव न मारे जाने चाहिए। प्रत्येक पक्ष की अष्टमी, चतुर्दशी, अमावस्या या पूर्णिमा तथा पुष्य और पुनर्वसु नक्षत्र के दिन, तीन चातुर्मासी के दिन तथा त्यौहारों के दिन बैल को बधिया न करना चाहिए तथा बकरा, भेड़ा, सुअर और इसी तरह के दूसरे प्राणियों को, जो वधिया किये जाते हैं, वधिया न करना चाहिए। पुष्य

और पुनर्वसु नक्षत्र के दिन, प्रत्येक चातुर्मास्य की पूर्णिमा के दिन और प्रत्येक चातुर्मास्य के शुक्ल पक्ष में घोड़े और बैल को न दागना चाहिए। राज्याभिषेक के बाद २६ वर्षों के अन्दर मैंने २५ बार कारागार से बंदियों को मुक्त किया है।

लौड़िया-नन्दनगढ़ का षष्ठ स्तम्भलेख

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहते हैं :—राज्याभिषेक के बारह वर्ष बाद मैंने धर्मलेख लोगों के हित और सुख के लिए लिखवाए, जिस से कि वे (पाप मार्ग को) त्याग कर भिन्न भिन्न प्रकार से धर्म की वृद्धि करें। इसी प्रकार मैं लोगों के हित और सुख को लक्ष्य रख कर यह देखता हूँ कि न केवल मेरे जाति-कुटुम्ब के लोग वरन् दूर के लोग और पास के लोग भी किस प्रकार सुखी रह सकते है। इमी (उद्देश्य) के अनुसार मैं कार्य करता हूँ। इसी प्रकार सब समाजों के (हित और सुख को) मैं ध्यान में रखता हूँ। मैंने सब पाषण्डों (सम्प्रदायों) का भी विविध प्रकार से सत्कार किया है। किन्तु अपने आप स्वयं (लोगों के पास) जाना यह मैं (अपना) मुख्य (कर्त्तव्य) मानता हूँ। राज्याभिषेक के २६ वर्ष बाद मैंने यह धर्मलेख लिखवाया।

रामपुरवा के स्तम्भलेख

प्रथम स्तम्भलेख

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहते हैं:—राज्याभिषेक के २६ वर्ष बाद मैंने यह धर्मलेख लिखवाया। अत्यन्त धर्मानुराग के बिना, विशेष आत्म-परीक्षा के बिना, बड़ी सेवा के बिना, पाप से बड़े भय के बिना और महान् उत्साह के बिना इस लोक में और परलोक में सुख दुर्लभ है। पर मेरी

शिक्षा से (लोगों का) धर्म के प्रति आदर और अनुराग दिन पर दिन बढ़ा है तथा आगे और भी बढ़ेगा । मेरे पुरुष (राजकर्मचारी), चाहे वे ऊँचे पद पर हों या नीचे पद पर अथवा मध्यम पद पर, (मेरी शिक्षा के अनुसार) कार्य करते हैं और ऐसा उपाय करते है कि चंचल बुद्धि वाले (दुर्विनीत या पापी) लोग भी धर्म का आचरण करने के लिए प्रेरित हों । इसी तरह अन्त-महामात्र (सीमान्त पर के राजकर्मचारी) भी आचरण करते हैं । धर्म के अनुसार पालन करना, धर्म के अनुसार कार्य करना, धर्म के अनुसार सुख देना और धर्म के अनुसार रक्षा करना यही विधि (शासन का सिद्धांत) है ।

रामपुरवा का द्वितीय स्तम्भलेख

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहते हैं :--धर्म करना अच्छा है । पर धर्म क्या है ? धर्म यही है कि पाप से दूर रहे; बहुत से अच्छे काम करे; दया, दान, सत्य और शौच (पवित्रता) का पालन करे । मैंने कई प्रकार से चक्षु का दान या आध्यात्मिक दृष्टि का दान भी लोगों को दिया है । दोपायों, चौपायों, पक्षियों और जलचर-जीवों पर भी मैंने अनेक कृपा की है, मैंने उन्हें प्राणदान भी दिया है। और भी बहुत से कल्याण के काम मैंने किये हैं । यह लेख मैंने इसलिए लिखवाया है कि लोग इसके अनुसार आचरण करें और यह चिरस्थायी रहे । जो इसके अनुसार कार्य करेगा, वह पुण्य का काम करेगा ।

रामपुरवा का तृतीय स्तम्भलेख

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहते हैं :—मनुष्य अपने अच्छे ही काम को देखता है (और मन में कहता है कि) "मैंने यह अच्छा काम किया है ।" पर वह अपने पाप को नहीं देखता (और मन में नहीं कहता कि) "यह पाप मैंने

किया है या यह दोष मुझमें है।" इस प्रकार की आत्म-परीक्षा बड़ी कठिन है। तथापि मनुष्य को यह देखना चाहिए कि क्रूरता, निष्ठुरता, क्रोध, मान, ईर्ष्या यह सब पाप के कारण हैं और इनके सबब से मनुष्य अपना नाश न होने दे। इस बात की ओर विशेष रूप से ध्यान देना चाहिए कि इस (मार्ग) से मुझे इस लोक में सुख मिलेगा और इस (दूसरे मार्ग) से मेरा परलोक भी बनेगा।

रामपुरवा का चतुर्थ स्तम्भलेख

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहते हैं :—राज्याभिषेक के २६ वर्ष बाद मैंने यह धर्मलेख लिखवाया। मेरे रज्जुक नाम के कर्मचारी लाखों मनुष्यों के ऊपर नियुक्त हैं। पुरस्कार तथा दण्ड देने का अधिकार मैंने उनके अधीन कर दिया है जिससे कि वे निश्चिन्त और निर्भय होकर अपना कर्त्तव्य पालन करें तथा लोगों के हित और सुख का ध्यान रखें और लोगों पर अनुग्रह करें। वे (लोगों के) सुख और दुःख का कारण जानने का प्रयत्न करेंगे और धर्मशील पुरुषों के द्वारा लोगों को ऐसा उपदेश देंगे कि जिससे वे लोग इस लोक में और परलोक में दोनों जगह सुख प्राप्त करें। रज्जुक लोग भी मेरी आज्ञा का पालन करेंगे। मेरे "पुरुष" (नामक कर्मचारी) भी मेरी इच्छा और आज्ञा के अनसार काम करेंगे। वे (पुरुष) भी कभी कभी ऐसा उपदेश देंगे कि जिससे रज्जुक लोग मुझे प्रसन्न करने का प्रयत्न करें। जिस प्रकार कोई मनुष्य अपने बच्चे को निपुण धाय के हाथ में सौंप कर निश्चिन्त हो जाता है (और सोचता है कि) यह धाय मेरे बच्चे को सुख पहुँचाने की भरपूर चेष्टा करेगी, उसी प्रकार लोगों के हित और सुख पहुँचाने के लिए मैंने रज्जुक नामक कर्मचारी नियुक्त किये हैं। वे निर्भय, निश्चिन्त और शान्तचित्त होकर काम करें, इसलिए मैंने पुरस्कार अथवा दण्ड देने का अधिकार उनके अधीन कर दिया है। मैं चाहता हूँ कि व्यवहार (न्याय के काम) में तथा दण्ड (सज़ा) देने में पक्षपात नहीं हो। इसलिए आज से मेरी यह आज्ञा है कि कारागार में पड़े हुए जिन मनुष्यों को दण्ड निश्चित हो चुका है उन्हें तीन दिन की मुहलत दी जाय। (इस बीच में अर्थात् तीन दिन की मुहलत के भीतर) जिन लोगों

को मृत्य का दण्ड मिला है उनके जाति-कुटुम्ब वाले उनकी ओर से उनके जीवन-दान के लिए (रज्जुकों से) पुनर्विचार की प्रार्थना करेंगे या वे अन्तकाल तक ध्यान करते हुए परलोक के लिए दान देंगे या उपवास करेंगे, क्योंकि मेरी इच्छा है कि कारागार में रहने के समय भी दण्ड पाये हुए लोग परलोक का चिन्तन करें और अनेक प्रकार का धर्माचरण, संयम और दान करने की इच्छा लोगों में बढ़े।

रामपुरवा का पंचम स्तम्भलेख

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहते हैं :—राज्याभिषेक के २६ वर्ष बाद मैंने निम्नलिखित प्राणियों का वध करना वर्जित कर दिया है :—सुग्गा, मैना, अरुण, चकोर, हंस, नान्दीमुख, गेलाट,, जतुका (चमगीदड़), अंबाकपीलिका (दीमक), दुडि (कछुवी), बिना हड्डी की मछली, वेदवेयक, गंगापुपुटक, संकुज-मत्स्य, कछुआ, साही, पर्णशश (गिलहरी), स्टमर (बारहसिंगा), साँड़, ओकपिण्ड, पलसत (गेंडा), श्वेत कबूतर, गांव के कबूतर, तथा सब तरह के वे चौपाये जो न तो किसी प्रकार के उपयोग में आते हैं और न खाये जाते हैं। गाभिन या दूध पिलाती हुई बकरी, भेड़ी या सुअरी को तथा इनके बच्चों को जो ६ महीने तक के हों, न मारना चाहिए। मुर्गे को बधिया न करना चाहिए। जीवित प्राणी सहित भूसी को न जलाना चाहिए। अनर्थ करने के लिए या प्राणियों की हिंसा करने के लिए वन में आग न लगाना चाहिए। एक जीव को मार कर दूसरे जीव को न खिलाना चाहिए। प्रति चार चार महीने की तीन ऋतुओं की तीन पूर्णमासी के दिन, पौष मास की पूर्णमासी के दिन, चतुर्दशी, अमावस्या और प्रतिपदा के दिन तथा प्रत्येक उपवास के दिन, मछली न मारना चाहिए और न बेचना चाहिए। इन सब दिनों में हाथियों के वन में तथा तालाबों में कोई भी दूसरे प्रकार के जीव न मारे जाने चाहिए। प्रत्येक पक्ष की अष्टमी, चतुर्दशी, अमावस्या या पूर्णिमा तथा पुष्य और पुनर्वसु नक्षत्र के दिन, तीन चातुर्मासी के दिन तथा त्योहारों के दिन, बैल को बधिया न करना चाहिए तथा बकरा, भेड़ा, सुअर और इसी तरह के दूसरे प्राणियों को, जो बधिया किये जाते हैं, बधिया न करना चाहिए। पुष्य और

पुनर्वसु नक्षत्र के दिन, प्रत्येक चातुर्मास्य की पूर्णिमा के दिन और प्रत्येक चातुर्मास्य के शुक्ल पक्ष में घोड़े और बैल को न दागना चाहिए। राज्याभिषेक के बाद २६ वर्षों के अन्दर मैंने २५ बार कारागार से बन्दियों को मुक्त किया है।

रामपुरवा का षष्ठ स्तम्भलेख

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहते हैं :—राज्याभिषेक के बारह वष बाद मैंने धर्मलेख लोगों के हित और सुख के लिए लिखवाये, जिससे कि वे (पाप के मार्ग को) त्याग कर भिन्न भिन्न प्रकार से धर्म की वृद्धि करें। इसी प्रकार मैं लोगों के हित और सुख को लक्ष में रखकर यह देखता हूँ कि न केवल मेरे जाति-कुटुम्ब के लोग वरन् दूर के लोग और पास के लोग भो किस प्रकार सुखी रह सकते हैं। इसी (उद्देश्य) के अनुसार मैं कार्य भी करता हूँ। इमी प्रकार सब समाजों के (हित और सुख को) मैं ध्यान में रखता हूँ। मैंने सब पाषण्डों (संप्रदायों) का भी विविध प्रकार से सत्कार किया है। किन्तु अपने आप स्वयं (लोगों के पास) जाना—यह मै (अपना) मुख्य (कर्त्तव्य) मानता हूँ। राज्याभिषेक के २६ वर्ष बाद मैंने यह धर्मलेख लिखवाया।

एलाहाबाद-कोसम के स्तम्भलेख

प्रथम स्तम्भलेख

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहते हैं:—राज्याभिषेक के २६ वर्ष बाद मैंने यह धर्मलेख लिखवाया। अत्यन्त धर्मानुराग के बिना, विशेष आत्म-परीक्षा के बिना, बड़ी सेवा के बिना, पाप से बड़े भय के बिना और महान् उत्साह के बिना इस लोक में और परलोक में सुख दुर्लभ है। पर मेरी शिक्षा से (लोगों का) धर्म के प्रति आदर और अनुराग दिन पर दिन बढ़ा है

तथा आगे और भी बढ़ेगा। मेरे पुरुष (राजकर्मचारी), चाहे वे ऊँचे पद पर हों या नीचे पद पर अथवा मध्यम पद पर, (मेरी शिक्षा के अनुसार) कार्य करते हैं और ऐसा उपाय करते है कि चंचल बुद्धि वाले (दुर्विनीत या पापी) लोग भी धर्म का आचरण करने के लिए प्रेरित हों। इसी तरह अन्त-महामात्र (सीमान्त पर के राजकर्मचारी) भी आचरण करते हैं। धर्म के अनुसार पालन करना, धर्म के अनुसार कार्य करना, धर्म के अनुसार सुख देना और धर्म के अनुसार रक्षा करना यही विधि (शासन का सिद्धांत) है।

एलाहाबाद-कोसम का द्वितीय स्तम्भलेख

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहते हैं :—धर्म करना अच्छा है। पर धर्म क्या है? धर्म यही है कि पाप से मे दूर रहे; बहुत से अच्छे काम करे; दया, दान, सत्य और शौच (पवित्रता) का पालन करे। मैंने कई प्रकार से चक्षु का दान या आध्यात्मिक दृष्टि का दान भी लोगों को दिया है। दोपायों, चौपायों, पक्षियों और जलचर जीवों पर भी मैंने अनेक कृपा की है, मैंने उन्हें प्राणदान भी दिया है। और भी बहुत से कल्याण के काम मैंने किये है। यह लेख मैंने इसलिए लिखवाया है कि लोग इसके अनुसार आचरण करें और यह चिरस्थायी रहे। जो इसके अनुसार कार्य करेगा वह पुण्य का काम करेगा।

एलाहाबाद-कोसम का तृतीय स्तम्भलेख

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहते हैं :—मनुष्य अपने अच्छे ही कामों को देखता है (और मन में कहता है कि) "मैंने यह अच्छा काम किया है।" पर वह अपने पाप को नहीं देखता (और मन में नहीं कहता कि) "यह पाप मैंने किया है या यह दोष मुझमें है।"..............................

एलाहाबाद-कोसम का चतुर्थ स्तम्भलेख

....

....

..............पुरस्कार अथवा दण्ड देने का अधिकार रज्जुकों के अधीन कर दिया है। मैं चाहता हूँ कि व्यवहार (न्याय के काम) में तथा दण्ड (सज़ा) देने में पक्षपात नहीं हो। इसलिए आज से मेरी यह आज्ञा है कि कारागार में पड़े हुए जिन मनुष्यों को मृत्यु का दण्ड निश्चित हो चुका है उन्हें तीन दिन की मुहलत दी जाय। (इस बीच में अर्थात् तीन दिन की मुहलत के भीतर) जिन लोगों को मृत्यु का दण्ड मिला है उनके जाति-कुटम्ब वाले उनकी ओर से उनके जीवन-दान के लिए (रज्जुकों से) पुनर्विचार की प्रार्थना करेंगे या वे अन्त काल तक ध्यान करते हुए परलोक के लिए दान देंगे या उपवास करेंगे। क्योंकि मेरी इच्छा है कि कारागार में रहने के समय में भी दण्ड पाये हुए लोग परलोक का चिन्तन करें और अनेक प्रकार का धर्माचरण, संयम और दान करने की इच्छा लोगों में बढ़े।

एलाहाबाद-कोसम का पंचम स्तम्भलेख

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहते हैं:—राज्याभिषेक के २६ वर्ष बाद मैंने निम्नलिखित प्राणियों का वध करना वर्जित कर दिया है:—सुग्गा, मैना, अरुण, चकोर...........नान्दीमुख, गैलाट, जतुका (चमगीदड़), अंबाक-पीलिका (दीमक), दुड़ी (कछुवी), बिना हड्डी की मछली, वेदवेयक, गंगापुपुटक, संकुज-मत्स्य, कछुआ,..........पर्णशश (गिलहरी), स्टमर (बारहसिंगा), साँड...............श्वेत कबूतर, गाँव के कबूतर तथा सब तरह के चौपाये जो न तो किसी प्रकार उपयोग में आते हैं और न ....

....

....

एलाहाबाद-कोसम का षष्ठ स्तम्भलेख

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ····························· ·· ································ इसी प्रकार मैं लोगों के हित और सुख को लक्ष्य में रखकर यह देखता हूँ कि ·························· ························· वरन दूर के लोग और पास के लोग भी किस प्रकार········ ··· ································कार्य भी करता हूँ। इसी प्रकार सब समाजों के (हित और सुख को) मैं ध्यान में रखता हूँ। मैंने सब पापण्डों (सम्प्रदायों) का भी विविध प्रकार से सत्कार किया है। किन्तु अपने आप स्वयं (लोगों) के पास जाना—यह मैं (अपना) मुख्य (कर्त्तव्य) मानता हूँ। ········· ·······················यह धर्मलेख लिखवाया।

एलाहाबाद-कोसम के स्तम्भ पर रानी का लेख

देवताओं के प्रिय सर्वत्र महामात्रों को यह आज्ञा देते हैं :—दूसरी रानी ने जो कुछ दान किया हो, चाहे वह आम्रवाटिका हो या उद्यान हो या दानशाला हो या और कोई चीज़ हो, वह सब उसी रानी का दान गिना जाना चाहिए। ऐसी प्रार्थना दूसरी रानी अर्थात् तीवर की माता की है।

एलाहाबाद-कोसम के स्तम्भ पर कौशाम्बी का स्तम्भलेख

देवताओं के प्रिय कौशाम्बी में नियुक्त महामात्रों को आज्ञा देते हैं कि (मैंने भिक्षुओं के संघ को तथा भिक्षुणियों के संघ को) एक किया है। (जो कोई

भिक्षु, या भिक्षुणी संघ में फूट डाले उसको) संघ में नहीं लेना चाहिए। भिक्षु या भिक्षुणी, जो कोई भी, संघ में फूट डालेगा उसको श्वेत वस्त्र पहनाकर उस स्थान से हटा दिया जाएगा जहाँ भिक्षु या भिक्षुणियाँ रहती हैं (अर्थात् वह भिक्षु-समाज से बहिष्कृत कर दिया जाएगा)।

लघु स्तम्भलेख

(१) सांची का लघु स्तम्भलेख

(यह धर्मलेख सांची में नियुक्त महामात्रों को सम्बोधित करके लिखा गया है। लेख के प्रारम्भ का भाग टूटा हुआ है।)

....

..............(संघ में) फूट नहीं डालनी चाहिए। भिक्षु तथा भिक्षुणी दोनों का संघ, जब तक सूर्य और चन्द्रमा हैं और जब तक मेरे पुत्र और परपोते राज्य करेंगे तब तक, एक रहेगा। जो कोई भिक्षुणी या भिक्ष, संघ में फूट डालेगा उसको श्वेत वस्त्र पहना कर उस स्थान में रख दिया जाएगा जो भिक्षु या भिक्षुणियों के लिये उचित नहीं है। क्योंकि मेरी इच्छा है कि संघ एक और चिरस्थित रहे।

(२) सारनाथ का लघु स्तम्भलेख

(यह लेख सारनाथ में नियुक्त महामात्रों को सम्बोधित कर के लिखा गया है। इसका भी प्रारम्भिक भाग टूटा हुआ है)।

देवताओं के प्रिय ....

........पाटलिपुत्र में.................कोई संघ में फूट न डाले। जो कोई-चाहे वह भिक्षु हो या भिक्षुणी-संघ में फूट डालेगा उसको श्वेत वस्त्र पहना कर उस स्थान में रख दिया जाएगा जो भिक्षुओं या भिक्षुणियों के योग्य नहीं

है (अर्थात् वह भिक्षु-समाज से बहिष्कृत कर दिया जाएगा) इस प्रकार मेरी यह आज्ञा भिक्षु-संघ और भिक्षुणी-संघ को बता दी जाय। देवताओं के प्रिय ऐसा कहते हैं :—इस प्रकार का एक लेख आप लोगों के पास आपके कार्यालय में रहे और ऐसा ही एक लेख आप लोग उपासकों के पास रख दें। उपासक लोग हर उपवास के दिन इस आज्ञा पर अपना विश्वास दृढ़ करने के लिए आवें। निश्चित रूप से हर उपवास के दिन प्रत्येक महामात्र इस आज्ञा पर अपना विश्वास जमाने तथा इसका प्रचार करने के लिए उपवासव्रत में सम्मिलित होवें। जहाँ जहाँ आप लोगों का अधिकार हो वहाँ वहाँ, आप सर्वत्र इस आज्ञा के अनुसार प्रचार करें। इसी प्रकार आप लोग सब कोटों (गढ़ों) और विषयों (प्रान्तों) में भी अधिकारियों को इस आज्ञा के अनुसार प्रचार करने के लिए भेजें।

(३) रुम्मिनदेई का लघु स्तम्भलेख

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने राज्याभिषेक के २० वर्ष बाद स्वयं आकर इस स्थान की पूजा की, क्योंकि यहाँ शाक्यमुनि बुद्ध का जन्म हुआ था। यहाँ पत्थर की एक प्राचीर (दीवार) बनवायी गयी और पत्थर का एक स्तम्भ खड़ा किया गया। बुद्ध भगवान् यहाँ जन्मे थे इसलिए लुम्बिनी ग्राम को कर से मुक्त कर दिया गया और (पैदावार का) आठवां भाग भी (जो राजा का हक था) उसी ग्राम को दे दिया गया।[1]

---

१ कुछ विद्वान् इस अन्तिम वाक्य का अर्थ इस प्रकार करते हैं :—"पैदावार का जो भी भाग कर के रूप में लिया जाता रहा हो, परन्तु उस ग्राम से पैदावार का केवल आठवां भाग ही लिया जाने लगा।"

(४) निग्लीव का लघु स्तम्भलेख

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने राज्याभिषेक के चौदह वर्ष बाद कनक-मुनि बुद्ध के स्तूप की लम्बाई बढ़ा कर दुगुनी कर दी और राज्याभिषेक के बीस वर्ष बाद स्वयं आकर (इस स्तूप की) पूजा की और (एक शिला-स्तम्भ) खड़ा किया ।

लघु शिलालेख

(यह धर्मलेख अशोक के राजकर्मचारियों को सम्बोधन करके लिखवाया गया है । यही धर्मलेख सहसराम, गुजर्रा, गवीमठ, मास्की, वैराट, ब्रह्मगिरि, येर्रागुडी, जटिंग रामेश्वर, पाल्कीगुण्डी, राजुल-मन्दगिरि, तथा सिद्धपुर में भी पाया जाता है । ब्रह्मगिरि, सिद्धपुर, येर्रागुडी, जटिंग रामेश्वर तथा राजुल मन्दगिरि में एक और लेख भी इसके साथ जुड़ा हुआ मिलता है जिसे द्वितीय लघु शिलालेख कहते हैं ।)

(१) रूपनाथ का लघु शिलालेख

देवताओं के प्रिय ऐसा कहते है :—अढ़ाई वर्ष से अधिक हुए कि मैं प्रगट रूप मे शाक्य (बौद्ध) हुआ । परन्तु अधिक उद्योग नहीं किया, किन्तु एक वर्ष मे अधिक हुए जब से मैं संघ में आया हूं तब से मैंने पूरी तरह उद्योग किया है । इस बीच जम्बूद्वीप (भारत) में जो देवता अब तक मनष्यों के साथ नहीं मिलते जुलते थे अब वे मेरे द्वारा (मनुष्यों से) मिल जुल गये हैं । यह उद्योग का फल है यह (उद्योग का फल) केवल बड़े ही लोग पा सकें (ऐसी बात नहीं है), क्योंकि छोटे लोग भी उद्योग करें तो बड़े भारी स्वर्ग (के सुख) को पा सकते हैं । यह अनुशासन

इसलिए लिखा गया कि छोटे और बड़े उद्योग करें। सीमान्त में रहने वाले लोग भी इस अनुशासन को जानें और मेरा यह उद्योग चिरस्थायी रहे। इस विषय का विस्तार होगा और बहुत विस्तार होगा, (कम से कम) डेढ़ गुना विस्तार होगा। यह अनुशासन अवसर के अनसार पर्वतों की शिलाओं पर लिखा जाना चाहिए। यहां राज्य में जहाँ कहीं शिला-स्तम्भ हो वहाँ शिला-स्तम्भ पर भी लिखा जाना चाहिए। इस अनुशासन के अनुसार जहाँ तक आप लोगों का अधिकार हो वहाँ तक आप लोग सर्वत्र (अधिकारियों को) भेज कर (इस का प्रचार करें।) यह अनशासन (मैंने) उस समय लिखाया जब मैं प्रवास में था और प्रवास के २५६ (दिन हो चुके थे)।

(२) सहसराम का लघु शिलालेख

देवताओं के प्रिय ऐसा (कहते) हैं :—······ ······वर्ष से अधिक हुए कि मैं उपासक हुआ। परन्तु अधिक उद्योग नहीं किया, किन्तु एक वर्ष से अधिक हुए जब से ····················· ·········इस बीच जम्बूद्वीप (भारत) में जो देवता अब तक मनुष्यों के साथ नहीं मिलते जुलते थे, अब वे मेरे द्वारा (मनुष्यों से) मिल जुल गये हैं। यह उद्योग का फल है। (यह उद्योग का फल) केवल बड़े ही लोग पा सकें (ऐसी बात नहीं है) क्योंकि छोटे लोग भी उद्योग करें तो महान् स्वर्ग का सुख पा सकते हैं। यह अनुशासन इसलिए लिखा गया कि छोटे और बड़े उद्योग करें। सीमान्त में रहने वाले लोग भी इस अनुशासन को जानें और मेरा यह उद्योग चिरस्थित रहे। इस विषय का विस्तार होगा, और बहुत विस्तार होगा, कम से कम डेढ़ गुना विस्तार होगा। यह अनुशासन मैंने उस समय लिखवाया जब मैं प्रवास में था और प्रवास की २५६ रात्रि बीत चुकी थी। इस अनुशासन को शिलाओं पर लिखवाओ और जहाँ कहीं यहाँ (मेरे राज्य में) शिला-स्तम्भ हो वहाँ यह अनुशासन शिला-स्तम्भ पर भी खुदवाओ।

(३) गुजर्रा का लघु शिलालेख

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी अशोक राजा का (यह अनुशासन है) :—अढ़ाई वर्ष से मैं उपासक हूँ। परन्तु एक वर्ष से अधिक हुआ जब से मैं संघ में आया हूँ तब से मैंने पूरी तरह उद्योग किया है। इस बीच जम्बूद्वीप (भारत) में देवताओं के प्रिय के (उद्योग से) जो देवता अब तक मनुष्यों के साथ नहीं मिलते जुलते थे अब वे (मनुष्यों से) मिल जुल गये हैं। यह उद्योग का फल है। यह (उद्योग का फल) केवल बड़े ही लोग पा सकें (ऐसी बात नहीं है), क्योंकि छोटे लोग भी उद्योग करें, धर्म के अनुसार आचरण करें तथा प्राणियों के साथ संयम (अहिंसा) का व्यवहार करें, तो बड़े भारी स्वर्ग (के सुख) को पा सकते हैं। यह अनुशासन इसलिए लिखा गया कि छोटे और बड़े धर्म का आचरण करें और उद्योग करें। सीमान्त में रहने वाले लोग भी इस अनुशासन को जानें और धर्म का आचरण चिरस्थायी रहे। (यह धर्म का आचरण चिरस्थायी रहेगा) यदि इसका पालन आप लोग करें। यह अनुशासन (मैंने) उस समय लिखाया जब मैं प्रवास में था और प्रवास के २५६ (दिन हो चुके थे)।

(४) गवीमठ का लघु शिलालेख

देवताओं के प्रिय कहते हैं :—अढ़ाई वर्ष से अधिक हुए कि मैं उपासक हुआ। परन्तु अधिक उद्योग नहीं किया। किन्तु एक वर्ष से अधिक हुए जब से मैं संघ में आया हूँ तब से मैंने पूरी तरह से उद्योग किया है। इस बीच जम्बूद्वीप (भारत) में जो देवता अब तक मनुष्यों के साथ नहीं मिलते जुलते थे, अब वे (मनुष्यों से) मिल जुल गये हैं। यह उद्योग का फल है। यह (उद्योग का फल) केवल बड़े ही लोग पा सकें (ऐसी बात नहीं है)। छोटे लोग भी उद्योग करें तो बड़े भारी स्वर्ग (के सुख) को पा सकते हैं। यह अनुशासन इसलिए (लिखा गया) कि छोटे और बड़े उद्योग करें। सीमान्त में रहने वाले लोग भी इस अनुशासन को जानें और (मेरा) यह उद्योग चिरस्थायी रहे। इस विषय का विस्तार होगा और बहुत विस्तार होगा, कम से कम डेढ़ गुना विस्तार होगा।

(५) मास्की का लघु शिलालेख

देवताओं के प्रिय अशोक की ओर से ऐसा कहना :—अढ़ाई वर्ष से अधिक हुए कि मैं शाक्य (बौद्ध) हुआ। (एक वर्ष से) अधिक (हुए जब से) मैं संघ में आया हूँ (और पूरी तरह से उद्योग किया है) जम्बूद्वीप (भारत) में जो देवता पहले मनुष्यों के साथ नहीं मिलते जुलते थे, वे अब (मनुष्यों) से मिल जुल गये हैं। छोटे लोग भी यदि धर्म का पालन करें तो इस उद्देश्य को प्राप्त कर सकते हैं। यह न समझना चाहिए कि केवल बड़े लोग ही यह कर सकते हैं। छोटे लोग और बड़े लोग सबों से यह कहना चाहिए कि यदि आप इस प्रकार करेंगे तो यह कल्याण-कारी होगा और चिरस्थायी रहेगा तथा इसका विस्तार होगा, कम से कम डेढ़ गुना विस्तार होगा।

(६) वैराट का लघु शिलालेख

देवताओं के प्रिय कहते हैं :—(अढ़ाई वर्ष से अधिक हुए कि) मैं उपासक हुआ। परन्तु अधिक ....
संघ में आया हूँ तब से मैंने अच्छी तरह .... जम्बूद्वीप (भारत) में जो देवताओं से न मिलते जुलते थे .... यह उद्योग का फल है। केवल बड़े ही लोग पा सकें ....
.... महान् स्वर्ग का सुख पा सकते हैं। ....
.... छोटे और बड़े उद्योग करें ....
सीमान्त में रहने वाले लोग भी इस अनुशासन को जानें और मेरा यह उद्योग चिरस्थित रहे .... विस्तार होगा ....
.... डेढ़ गुना विस्तार होगा।

(७) पाल्कीगुण्डू का लघु शिलालेख

....

....

....

.... मनुष्यों के साथ ....

.... यह (केवल बड़े ही लोग पा सकें ऐसी बात नहीं है) ....

.... उद्योग करें तो बड़े भारी स्वर्ग (के सुख) को पा सकते हैं ....

... उद्योग करें। सीमान्त के लोग भी जानें .... विस्तार होगा, डेढ़ गुना विस्तार होगा ....

(८) ब्रह्मगिरि का लघु शिलालेख

सुवर्णगिरि से आर्यपुत्र (कुमार) और महामात्रों की ओर से इसिला के महामात्रों को आरोग्य (की शुभकामना) कहना और यह सूचित करना कि देवताओं के प्रिय आज्ञा देते हैं कि अढ़ाई वर्ष से अधिक हुए कि मैं उपासक हुआ। परन्तु एक वर्ष मैंने अधिक उद्योग नहीं किया। पर एक वर्ष से अधिक हुए जब से मैं संघ में आया हूँ, तब से मैंने खूब उद्योग किया है। इस बीच जम्बूद्वीप (भारत) में जो देवता अब तक मनुष्यों के साथ नहीं मिलते जुलते थे वे अब (मनुष्यों से) मिल जुल गये हैं। यह उद्योग का फल है। यह (उद्योग का फल) केवल बड़े ही लोग प्राप्त कर सकते हैं ऐसी बात नहीं है, क्योंकि छोटे लोग भी उद्योग करें तो महान् स्वर्ग के सुख को पा सकते हैं। यह अनुशासन इसलिए लिखा गया है कि छोटे और बड़े (इस उद्देश्य के लिए) उद्योग करें। सीमान्त में रहने वाले लोग भी इस अनुशासन को जानें और मेरा यह उद्योग चिरस्थायी रहे। इस विषय का विस्तार होगा और बहुत विस्तार होगा, कम से कम डेढ़ गुना विस्तार होगा। यह अनुशासन मैंने उस समय प्रचारित

किया जब मैं प्रवास में था और प्रवास के २५६ (दिन) हो चुके थे।

और भी देवताओं के प्रिय ऐसा कहते हैं :—माता पिता की सेवा करनी चाहिये, इसी प्रकार गुरुओं की भी सेवा करनी चाहिए, प्राणियों के प्रति दया दृढ़ता के साथ दिखानी चाहिए, सत्य बोलना चाहिए धर्म के इन गुणों को आचरण में लाना चाहिए। इसी प्रकार शिष्य को आचार्य का आदर करना चाहिए और अपने जाति भाइयों के प्रति उचित बर्ताव करना चाहिए। यही प्राचीन (धर्म की) रीति है। इससे आयु बढ़ती है। इसी के अनुसार (मनुष्य को) चलना चाहिये। चपड़ नामक लिपिकार (लेखक) ने यह लिखा।

(६) सिद्धपुर का लघु शिलालेख

सुवर्णगिरि से आर्यपुत्र (कुमार) और महामात्रों की ओर से इसिला के महामात्रों को आरोग्य (की शुभकामना) कहना और यह सूचित करना कि देवताओं के प्रिय ऐसा कहते हैं :—अढ़ाई वर्ष से अधिक हुए कि मैं उपासक हुआ। परन्तु एक वर्ष मैंने अधिक उद्योग नहीं किया। पर एक वर्ष से अधिक हुए जब से मैं संघ में आया हूँ तब से मैंने अच्छी तरह उद्योग किया है। इस बीच जम्बूद्वीप (भारत) में ·································· (मनुष्यों से) मिल जुल गये हैं। यह उद्योग का फल है। यह (केवल बड़े ही लोग) पा सकें (ऐसी बात नहीं है), क्योंकि छोटे लोग भी ················ तो महान् स्वर्ग का सुख पा सकते हैं। यह अनुशासन इसलिए लिखा गया कि छोटे और बड़े उद्योग करें। सीमान्त ··········· और मेरा यह उद्योग चिरस्थायी रहे। ················· विस्तार होगा और बहुत विस्तार होगा, (कम से कम) डेढ़ गुना विस्तार होगा। यह अनुशासन (मैंने उस समय लिखवाया जब मैं प्रवास में था और) प्रवास के २५६ (दिन हो चुके थे)। माता पिता की सेवा करनी चाहिए ··················· सत्य बोलना चाहिए ············· धर्म के इन गुणों को ······················· इसी प्रकार शिष्य को आचार्य का आदर करना चाहिए ··············· यही प्राचीन (धर्म की) रीति है। इससे आयु बढ़ती है। ···········

(१०) जटिंग-रामेश्वर का लघु शिलालेख

....

....

....

................ओर प्रवास के २५६ दिन हो चुके थे। इसी प्रकार माता पिता की सेवा करनी चाहिए.................प्राणियों................ के प्रति दया दिखानी चाहिए ....शिष्य को आचार्य का आदर करना चाहिए। यही प्राचीन (धर्म) की रीति है। इसमे आयु बढ़ती है। ....चपड़ नामक लिपिकार (लेखक) ने यह लिखा।

(११) येर्रागुडी का लघु शिलालेख

देवताओं के प्रिय ऐसा कहते है :–(अढ़ाई वर्ष से अधिक हुए जब मै बौद्ध हुआ, किन्तु अधिक उद्योग नहीं किया), परन्तु एक वर्ष से अधिक हुआ जब से मैं संघ में आया हूँ (तब से मैंने पूरी तरह उद्योग किया है। (इस बीच जो मनुष्य अब तक) देवताओं के साथ नहीं मिलते जुलते थे, वे अब मेरे द्वारा देवताओं के साथ मिल जुल गये हैं। यह उद्योग का फल है। (यह उद्योग का फल केवल बड़े ही लोग पा सकें ऐसी बात नहीं है, क्योंकि छोटे लोग भी उद्योग करें तो) बड़े भारी स्वर्ग (के सुख) को पा सकते हैं। यह अनुशासन इसलिए लिखा गया है कि छोटे और बड़े (धनी) भी इस उद्योग को करें। (सीमान्त में रहने वाले लोग भी इस अनुशासन को जाने और इसके अनुसार आचरण करें) जिसमें कि यह उद्योग चिरस्थायी रहे। इसका बहुत विस्तार होगा, कम से कम डेढ़ गुना विस्तार होगा ....

देवताओं के प्रिय ऐसा कहते है :–राजा की आज्ञा के अनुसार आपको चलना चाहिए। आप लोग 'रज्जुक' नामक कर्मचारियों को आदेश देंगे और रज्जुक

लोग ग्रामवासियों तथा 'राष्ट्रिक' नामक कर्मचारियों को आदेश देंगे कि "माता पिता की सेवा करनी चाहिए, प्राणियों पर दया करनी चाहिए, सत्य बोलना चाहिए, धर्म के इन गुणों का उपदेश देना चाहिए।" इसी प्रकार आप लोग देवताओं के प्रिय के कहने के अनुसार गजवाहकों, लेखकों, अश्ववाहकों और ब्राह्मणों के आचार्यों को आज्ञा देवें कि वे अपने अपने शिष्यों को प्राचीन रीति के अनुसार शिक्षा देवें। इस आदेश का पालन होना चाहिए। आचार्य की प्रतिष्ठा इसी में है। इसी प्रकार के आचरण की परिपाटी आचार्य के कुटम्ब के पुरुष व्यक्तियों द्वारा स्त्री व्यक्तियों में भी स्थापित करनी चाहिए। आचार्य को शिष्यों के प्रति उचित व्यवहार करना चाहिए, जैसा कि पुरानी रीति है। इसी प्रकार आप लोग अपने शिष्यों को उपदेश दें जिससे कि इस धर्म के सिद्धान्त की उन्नति और वृद्धि हो। यह देवताओं के प्रिय का आदेश है।

(१२) राजुल-मन्दगिरि का लघु शिलालेख

देवताओं के प्रिय ऐसा कहते हैं :— ....अधिक (हुए)
..................अधिक उद्योग नहीं किया ....।
एक वर्ष से अधिक हुए ....पूरी तरह उद्योग किया है।
इस बीच....................यह उद्योग का फल है। यह उद्योग का फल
केवल बड़े ही लोग पा सकें ....छोटे लोग भी ....
..........................बड़े भारी स्वर्ग..............................
यह अनुशासन इसलिए लिखा गया..........सीमान्त में रहने वाले लोग भी
इस अनुशासन को जानें और (मेरा) यह उद्योग चिरस्थायी रहे। ....
...........यह अनुशासन (मैंने) उस समय लिखाया जब मैं प्रवास में था
और प्रवास के २५६ (दिन हो चुके थे)।

देवताओं के प्रिय ऐसा कहते हैं :—जैसे ....
रज्जुकों को आज्ञा देनी चाहिए..
आज्ञा देंगे..............................देवताओं के प्रिय के वचन

के अनुसार आज्ञा देना ....
प्राचीन धर्म की रीति .... जाति भाइयों के प्रति उचित
बर्ताव करना चाहिए ....
....
....

(१३) कलकत्ता-वैराट का लघु शिलालेख

मगध के राजा प्रियदर्शी संघ को अभिवादन-पूर्वक कहते हैं (और आशा करते हैं) कि वे विघ्न-रहित और सुख-पूर्वक होंगे। हे भदन्तगण, आपको विदित है कि बुद्ध, धर्म और संघ में हमारी कितनी भक्ति और श्रद्धा है। हे भदन्तगण, जो कुछ भगवान् बुद्ध ने कहा है सो सब अच्छा कहा है। पर भदन्तगण, जिसको म समझता हूँ कि इससे सद्धर्म चिरस्थायी रहेगा उसको (अर्थात् अवश्य पढ़े जाने योग्य धर्म-ग्रंथों के नामों को) यहाँ पर लिखता हूँ यथा :—विनय समुकस (विनय-समुत्कर्ष) अर्थात् विनय का महत्त्व, अलियवसाणि (आर्य-वंश) अर्थात् आर्य जीवन, अनागतभयानि (अनागत-भय) अर्थात् आने वाला भय, मुनिगाथा अर्थात् मुनियों का गान, मौनेयसूते (मौनेय-सूत्र) अर्थात् मुनियों के संबन्ध में उपदेश, उपतिसपसिने (उपतिष्य प्रश्न) अर्थात् उपतिष्य का प्रश्न, लाघुलोवादे (राहुलवाद) अर्थात् राहुल को उपदेश, जिसे भगवान् बुद्ध ने झूठ बोलने के बारे में कहा है। इन धर्मग्रन्थों को,[१] हे भदन्तगण, मैं चाहता हूँ कि बहुत से भिक्षु और भिक्षुणियाँ बार-बार श्रवण करें और मन में धारण करें। इसी प्रकार उपासक तथा उपासिकाएं भी (सुनें और धारण करें), हे भदन्तगण, मैं इसलिए यह (लेख) लिखवाता हूँ कि लोग मेरा अभिप्राय जानें।

---

१. ये धर्मग्रन्थ कौन हैं, इसके बारे में विद्वानों में मतभेद है।

बराबर की पहाड़ी पर गुफालेख

प्रथम गुफालेख

राजा प्रियदर्शी ने राज्याभिषेक के १२ वर्ष बाद यह न्यग्रोध गुफा आजीविकों को दी ।

द्वितीय गुफालेख

राजा प्रियदर्शी ने राज्याभिषेक के १२ वर्ष बाद स्खलतिक पर्वत पर यह गुफा आजीविकों को दी ।

तृतीय गुफालेख

राजा प्रियदर्शी ने राज्याभिषेक के १९ वर्ष बाद सुन्दर स्खलतिक पर्वत पर यह गुफा वर्षाकाल में (बाढ़ के पानी से बचाव के लिए) आजीविकों को दी ।

●

परिशिष्ट–(क)

अशोक के धर्मलेखों में आए हुए कुछ शब्दों की अर्थ-सहित सूची

अ

अनागत भयानि........एक बौद्ध ग्रन्थ का संस्कृत नाम जिसके बारे में अशोक ने अपने एक धर्मलेख में कहा है कि यह भिक्षु, भिक्षुणी तथा उपासक सब को पढ़ना चाहिए।

अन्तिकिनि............मेसिडोनिया का यूनानी राजा एन्टिगोनस गोनेटस (२७७-२३९ ई० पू०), जो अशोक का समकालीन था।

अन्तियोक.........पश्चिमी एशिया का यूनानी राजा एन्टिओकस थिअस द्वितीय, जो अशोक का समकालीन था।

अलिकसुन्दर...........इपाइरस का यूनानी राजा (२७२-२५५ ई० पू०) या कोरिन्थ का यूनानी राजा (२५२–२४४ ई० पू०) एलेक्ज़ेण्डर, जो अशोक का समकालीन था।

आ

आजीविक.............प्राचीन भारत का एक धार्मिक सम्प्रदाय। इस सम्प्रदाय के लोग बुद्ध के समकालीन गोशाल नामक एक धार्मिक नेता के अनुयायी थे।

आन्ध्र................वे लोग जो अशोक के साम्राज्य के अन्तर्गत दक्षिण भारत के उत्तरी भाग में रहते थे।

आर्यवंश..............एक बौद्ध ग्रन्थ का संस्कृत नाम जिसको अशोक ने भिक्षु, भिक्षुणी तथा उपासक सबों को पढ़ने के लिए कहा है।

उ

उज्जयिनी............मध्य-भारत में पश्चिमी मालवा का एक नगर जिसे आजकल उज्जैन कहते हैं। यह अशोक के साम्राज्य के पश्चिमी प्रदेश की राजधानी या प्रधान केन्द्र था।

क

कनकमुनि.............एक पूर्वकालीन बुद्ध, जो गौतमबुद्ध से पहले हुए थे।

कलिंग...............वे लोग जो मौर्य-काल में बंगाल की खाड़ी के किनारे रहते थे, कलिंग कहलाते थे। उनके प्रान्त का नाम भी कलिग ही था। इसकी राजधानी तोसली थी, जो वर्तमान में उड़ीसा के पुरी जिले में धौली नामक स्थान पर स्थित थी।

काम्बोज.............पश्चिमी पाकिस्तान तथा अफगानिस्तान के विस्तृत क्षेत्र में बसे हुए लोग काम्बोज कहलाते थे।

कारुवाकी............अशोक की दूसरी रानी तथा राजकुमार तीवर की माता।

केरलपुत्र.............दक्षिण भारत में मलयालम-भाषा-भाषी केरल प्रदेश के राजा का नाम केरलपुत्र था। यह प्रदेश अशोक के साम्राज्य के बहिर्गत था।

कौशाम्बी.............एक प्राचीन नगरी (वर्तमान उत्तर प्रदेश के इलाहाबाद जिले में कोसम ग्राम) ।

क्रोश................लगभग सवा दो मील की दूरी को एक क्रोश या कोस कहते थे ।

ग

गन्धार...............पश्चिमी पाकिस्तान के रावलपिण्डी-पेशावर के प्रान्त में रहने वाले लोग गन्धार कहलाते थे । यह प्रान्त अशोक साम्राज्य के अन्तर्गत था ।

च

चोड़.................चोड़ लोग मद्रास राज्य के तंजवूर-तिरुचिरपल्ली प्रान्त में रहते थे । चोड़ लोगों का प्रदेश अशोक साम्राज्य के बाहर था । चोड़ को चोल भी कहते हैं ।

ज

जम्बूद्वीप.............पृथ्वी, या पृथ्वी का वह भाग जिसमें भारतवर्ष सम्मिलित था । प्राचीन भारतीय परिपाटी के अनुसार अशोक का साम्राज्य जम्बूद्वीप या पृथ्वी-मण्डल नाम से कहा गया है ।

त

तक्षशिला.............पश्चिमी पाकिस्तान के रावलपिण्डी जिले में एक प्राचीन नगर। यह अशोक के साम्राज्य केद पिचमोत्तर

प्रान्त का प्रधान केन्द्र था। (वर्तमान टैक्सिला)

ताम्रपर्णी·············लंका का प्राचीन नाम।

तिष्य················एक नक्षत्र का नाम। इसको पुष्य नक्षत्र भी कहते हैं। पौष मास में यह नक्षत्र पड़ता है, इससे पौष मास को भी तिष्य कहते हैं। अशोक कदाचित् इसी नक्षत्र में पदा हुआ था। अतएव संभवतः इसी कारण वह इसको मंगलमय या पवित्र समझना था।

तीवर················अशोक की दूसरी रानी से उत्पन्न राजकुमार।

तुरमाय या तुलमाय······ईजिप्ट या मिस्र का यूनानी राजा टालेमी द्वितीय फिलाडेल्फस (२८५-२४७ ई० पू०)। वह अशोक का समकालीन था।

तोसली···············अशोक के साम्राज्य के अन्तर्गत कलिंग प्रदेश की राजधानी। यह नगर उड़ीसा के पुरी जिले में वर्तमान धौली के स्थान पर बसा हुआ था।

ध

धर्म-महामात्र···········अशोक के वे उच्च अधिकारी जो अशोक द्वारा प्रचारित धर्म-सम्बन्धी मामलों और कार्यों की देखभाल करते थे।

न

नाभक···············नाभक लोग कौन थे यह पता नहीं चला। ये लोग अशोक के साम्राज्य में रहते थे।

निर्ग्रन्थ..............एक धार्मिक सम्प्रदाय जो वर्धमान के सिद्धान्तों को मानता था। वधमान को महावीर, जिन तथा निर्ग्रन्थ भी कहते हैं और निर्ग्रंथों को जैन के नाम से भी पुकारते हैं।

न्यग्रोध..............बिहार के गया जिले में स्थित बराबर पहाड़ी में एक गुफा का नाम। यह गुफा अशोक ने "आजीविक" नामक भिक्षुओं के लिए बनवायी थी।

प

पाटलिपुत्र............बिहार में वर्तमान पटना के निकट प्राचीन नगर का नाम पाटलिपुत्र था। यह अशोक के साम्राज्य की राजधानी थी।

पाण्ड्य................पाण्ड्य लोग मद्रास राज्य के वर्तमान मदुरे-रामनाथ-पुरम्-तिरुनेल्वेली भाग में रहते थे। उनका प्रदेश अशोक साम्राज्य के बहिर्गत था।

पैत्र्यणिक............पैत्र्यणिक लोग कौन थे यह पता नहीं चला है। ये लोग साम्राज्य के अन्तर्गत थे।

पौलिन्द या पुलिन्द......विंध्य पर्वत के प्रान्त में रहने वाली एक जाति।

प्रादेशिक.............अशोक का एक अधिकारी-वर्ग "प्रादेशिक" कहलाता था। "प्रादेशिक" के अधिकार में कदाचित् कुछ जिले रहते थे।

प्रियदर्शी.............अशोक का एक नाम।

भ

भोज................वे लोग जो अशोक के साम्राज्य के अन्तर्गत दक्षिण में बरार प्रान्त में तथा उससे लगे हुए पश्चिमी भारत के कुछ भाग में रहते थे, भोज कहलाते थे।

म

मका, मगा............उत्तरी अफ्रीका में साइरीनी का राजा (२८२-२५८ ई० पू०), जो अशोक का समकालीन था।

मगध................दक्षिणी बिहार के वर्तमान पटना तथा गया जिले को मिला कर मगध राज्य बना था।

महामात्र.............अशोक के कुछ उच्च अधिकारी या कर्मचारी महामात्र कहलाते थे। महामात्र कई प्रकार के थे। उनमें से एक प्रकार के महामात्र धर्म-महामात्र कहलाते थे।

य

यवन..................सर्व प्रथम यवन शब्द भारतीयों के द्वारा ग्रीक या यूनानी लोगों के लिए व्यवहार में आया था। धर्मलेखों में यवन लोग अशोक-साम्राज्य के अन्तर्गत सम्भवतः अफगानिस्तान में बसे हुए लिखे गये हैं। अशोक के धर्मलेखों में पश्चिमी एशिया के अधिपति अन्तियोक या एन्टिओकस् द्वितीय थीअस का उल्लेख यवनों के राजा के रूप में आया है।

युक्त.................युक्त अशोक के राज्य में एक प्रकार के राजकर्मचारी

या अफसर थे। वे लोग कदाचित् जिले के एक भाग या तहसील के ऊपर नियुक्त थे।

योजन...............एक योजन की दूरी लगभग नौ मील के बराबर मानी गयी है।

र

रज्जुक...............अशोक के एक अधिकारी-वर्ग का नाम। रज्जुक लोग कदाचित् एक एक जिले के ऊपर रहते थे।

राष्ट्रिक...............अशोक के एक अधिकारी-वर्ग का नाम। राष्ट्रिक लोग कदाचित् जिले के कुछ भाग के ऊपर रखे जाते थे।

ल

लुम्बिनी...............एक ग्राम का नाम, जहाँ बुद्ध भगवान् पैदा हुए थे। आज कल रुम्मिनदेई ग्राम इसी के स्थान पर बसा हुआ है।

श

शाक्य...............एक वंश का नाम था। बुद्ध भगवान् इसी वंश में पैदा हुए थे। इसी से वह "शाक्य मुनि" कहलाते थे। लिच्छवियों और मौर्यों के समान शाक्य लोग भी हिमालय के एक प्रान्त में रहते थे और भारतीय तथा मंगोलियन की मिलीजुली जाति के थे।

श्रमण...............बौद्ध भिक्षु को श्रमण भी कहते हैं।

स

सत्यपुत्र या सातियपुत्र. . . .दक्षिण भारत में मलयालम्-भाषा-भाषी प्रान्त के समीप एक भाग को सातिय कहते हैं। वहाँ राज्य करने वाले राजा की पदवी सातियपुत्र थी।

समापा. . . . . .कलिंग प्रदेश का एक प्राचीन नगर। यह नगर उड़ीसा के गंजाम जिले में जौगढ़ नाम की पहाड़ी के पास बसा हुआ था।

संघ . . . . .बौद्ध धर्म के भिक्षुओं के समूह को संघ के नाम से कहा जाता है।

स्खलतिक. . . . . .बिहार के गया जिले में वर्तमान बराबर पहाड़ी का नाम स्खलतिक पर्वत था।

स्तूप . . . . .बौद्ध धर्म के किसी महान् पुरुष के अवशेष पर बना हुआ निर्माण या ढांचा स्तूप कहलाता है।

परिशिष्ट—(ख)

अशोक के धर्मलेखों के विशेष अध्ययन की सामग्री

यदि कोई पाठक अशोक के धर्मलेखों का विशेष तथा समालोचनात्मक अध्ययन करना चाहें तो उन्हें निम्नलिखित पुस्तकों तथा लेखों से पर्याप्त सहायता मिलेगी :—

१. बी० एम० बरूआ— "इन्स्क्रिप्शन्स ऑफ अशोक" तथा "अशोक एन्ड हिज इन्स्क्रिप्शन्स"

२. डी० आर० भण्डारकर—"अशोक" (द्वितीय संस्करण)

३. एन० पी० चक्रवर्ती— "एन्शियन्ट इन्डिया" नम्बर ४ में पृष्ठ १५ से पृष्ठ २५ तक अशोक के लघु शिलालेखों के सम्बन्ध में।

४. ई० हुल्श— "इन्स्क्रिप्शन्स आफ अशोक" (कोर्पस इन्स्क्रिप्शनम् इन्डिकेरम् भाग १)

५. एस० एन० मित्र— "इन्डियन कल्चर" भाग १५ में पृष्ठ ७८ से पृष्ठ ८१ तक तृतीय गुफालेख के सम्बन्ध में।

६. आर० के० मुकर्जी— "अशोक" (द्वितीय संस्करण)।

७. डी० आर० साहनी— "एनअल रिपोर्ट आफ दी आर्किओलोजिकल सर्वे आफ इन्डिया" १९२८-२९ पृष्ठ १६१-६७ (येर्रागुडी के शिलालेखों के सम्बन्ध में)

८. डी० सी० सरकार– (१) "सेलेक्ट इन्स्क्रिप्शन्स बेयरिंग आन इन्डियन हिस्ट्री एन्ड सिविलिजेशन" १९४३ (२) "मास्की इन्स्क्रिप्शन आफ अशोक" (हैदराबाद आर्किओलोजिकल सीरीज नं० १) (३) "गुजर्रा इन्स्क्रिप्शन आफ अशोक" (४) "राजुल-मन्दगिरि इन्स्क्रिप्शन आफ अशोक" (एपिग्रेफिया इन्डिका भाग ३१)।

९. आर० एल० टर्नर– "हैदराबाद आर्किओलोजिक सीरीज" नं० १० में गवीमठ तथा पाल्कीगुण्डू के लघु शिलालेख के सम्बन्ध में।

१०. जूल्स ब्लाक– "ले इन्स्क्रिप्शन्स द अशोक" १९५० (फ्रेंच भाषा में)

११. जनार्दन भट्ट– "अशोक के धर्म लेख" (ज्ञानमण्डल काशी)

१२. वी० ए० स्मिथ– "अशोक" (तृतीय संस्करण)

१३. भण्डारकर और मजुमदार– "इन्स्क्रिप्शन्स आफ अशोक" (दो भाग)

१४. रामावतार शर्मा "प्रियदर्शि-प्रशस्तय:"

१५. चारुचन्द्र वसु– "अशोक अनुशासन" (बंगला भाषा में)